देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
July 2023
Vol.-18, Issue-1(3)

Impact Factor
7.523

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

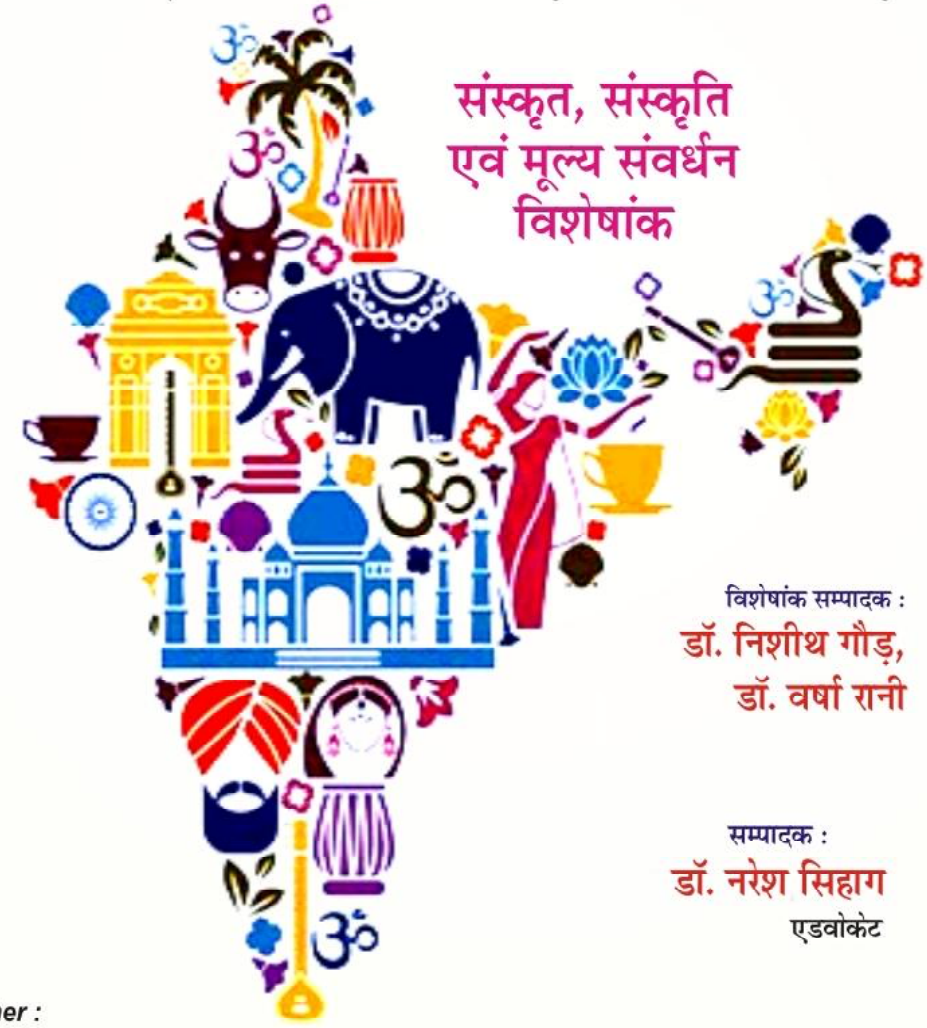

संस्कृत, संस्कृति एवं मूल्य संवर्धन विशेषांक

विशेषांक सम्पादक :
डॉ. निशीथ गौड़,
डॉ. वर्षा रानी

सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग
एडवोकेट

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 18 ISSUE-1(3) (जुलाई 2023) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :
चौ. एम. सिहाग

विशेषांक सम्पादक :
डॉ. निशीथ गौड़,
डॉ. वर्षा रानी

सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट
एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :
गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराव
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

जुलाई 2023

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	शुभकामना संदेश	प्रोफेसर आनन्द मोहन	9–9
2.	सम्पादकीय	डॉ. निशीथ गौड़, वर्षा रानी	10–11
3.	संस्कृत शिक्षण में व्यतिरेकी भाषाविज्ञान की उपयोगिता	डॉ. रणजीत भारती	12–15
4.	बहुतलीयावासीयभवनेभूमिचयनसिद्धान्ताः	डॉ. देशबन्धुः, विनय कुकरेती	16–23
5.	ज्योतिषशास्त्रे वर्णिताः भौगोलिकसिद्धान्ताः	गिरिराज शर्मा	24–29
6.	वेदों में राजा और सैन्य व्यवस्था	डॉ. अश्वनी कुमार	30–33
7.	पौराणिकसाहित्ये साङ्गीतिकतत्त्वानामध्ययनम् (वायुपुराणंश्रीमद्भागवतपुराणंश्रीहरिवंशपुराणंमार्कण्डेयपुराणञ्च)	कृति यादव	34–42
8.	वेदकालीन संस्कृत एवं संस्कृति	डॉ. आदित्य प्रकाश	43–48
9.	भारतीय कृषि की सांस्कृतिक परंपरा का किसानों पर प्रभाव : वर्तमान परिपेक्ष्य में	कु. सपना डी. गजबिये	49–53
10.	भारतीय संस्कृति : ‘‘जागु जीव जड़’’	डॉ. एन.एल. मिश्रा	54–58
11.	भारतीय संस्कृति में चेतना का स्वरूप	डॉ. गौरव गौतम	59–63
12.	आचार्य दण्डी से परवर्ती आचार्यो की अलङ्कार धारणा	डॉ. जया कुमारी	64–67
13.	महाभारत कालीन संस्कृति ‘‘शान्तिपर्व में वर्णित भीष्म युधिष्ठिर संवाद में लौकिक ज्ञान’’	प्रो० अर्चना गिरि	68–79
14.	भारतीय दर्शन में कर्म एवं पुनर्जन्म की अवधारणा	डॉ० सुधीर कुमार झा	80–90
15.	Yoga for Health, Happiness and Harmony : A Study	Dr. Avijit Mandal	91-95
16.	महर्षि यास्क का संस्कृत भाषा चिंतन में योगदान	प्रतीक कुमार यादव	96–98
17.	शिव पुराण के अनुसार ‘प्रणव’ रूपी शिव तत्व का वर्णन	वीणा प्रसाद	99–101
18.	चरक संहिता में गर्भाधान संस्कार	अंजली प्रसाद	102–104
19.	संस्कृत में निहित नैतिक मूल्य	हितेश कुमार	105–108
20.	कथावस्तु के आधार पर राग दरबारी का मूल्यांकन	डॉ. सुमन शुक्ल	109–112
21.	भारवि द्वारा वर्णित दुर्योधन की राजव्यवस्था	डॉ. दिलारा रिज़वी	113–116
22.	श्रीमद् वाल्मीकि रामायण में पर्वतीय जल स्रोत	डॉ. प्रमिला मिश्रा	117–120
23.	ऋग्वैदिक संस्कृति के उदात्त मूल्य	डॉ. दिवाकर पांडेय	121–125

DAYALBAGH EDUCATIONAL INSTITUTE
(DEEMED TO BE UNIVERSITY)
DAYALBAGH
AGRA - 282 005, UP (INDIA)

Phone : 0562-2801545, Fax : 0562-2801226
website :- http://www.dei.ac.in

शुभकामना संदेश

बोहल शोध मंजूषा शोध की दिशा में एक अत्यंत उच्च श्रेणी की पत्रिका है। जो अनुसंधान के क्षेत्र में शोधार्थियों को नवीन शोध कार्य के लिए प्रेरित करती है । यह शोध की दिशा में एक सकारात्मक प्रयास है। इस शोध पत्रिका का जुलाई 2023 का 'संस्कृत संस्कृति एवं मूल्य संवर्धन' अंक विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि वर्तमान में मनुष्य को नैतिक मूल्यों की आवश्यकता अधिक है । आज जैसे-जैसे मानव ज्ञान- विज्ञान के क्षेत्र में निरंतर प्रगति के सोपानों पर चढ़ता जा रहा है, वहीं वह मानवीय मूल्यों को विस्मृत कर बैठा है। जिस पर ध्यान देने की अत्यंत आवश्यकता है और इस विशेषांक के द्वारा ऐसे सभी पहलुओं पर शोध प्रपत्र लिखे गए हैं। बोहल शोध मंजूषा का जुलाई 2023 का यह अंक अनुसंधान के विकास की संभावना से परिपूर्ण है। इस अंक की सफलता के लिए मेरी अनंत शुभकामनाएं।

आनन्द मोहन

प्रोफेसर आनन्द मोहन
कुलसचिव,
डी.ई.आई (डीम्ड टू बी) विश्वविद्यालय, दयालबाग़,आगरा

अतिथि सम्पादक की कलम से.....

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझको सौंपता क्या लागे है मेरा।
- संत कबीर

शिक्षा एक व्यापक शब्द है। केवल साक्षरता को संकुचित अर्थ में भले ही शिक्षा कह दिया जाए किंतु वास्तविक शिक्षा तो व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करती है । यह हमारी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का उद्घाटन करती है। संस्कृत में हमारी संस्कृति सन्निहित है, संस्कार निहित हैं एवं संपूर्ण जीवन मूल्य समाहित हैं ।

ज्ञान- विज्ञान का केंद्र, चारों वेद, उपनिषद्, पुराण, धर्मशास्त्र, नीति ग्रंथ, सुरभारती के द्वारा ही प्रतिष्ठित हैं। न केवल प्राचीनतम साहित्य वरन् आज अत्यंत नव्य विधाओं में संस्कृत लेखन अनवरत चलता ही जा रहा है। यह एक वैज्ञानिक भाषा है और कंप्यूटर,एआई, कोडिंग आदि के लिए भी श्रेष्ठ सिद्ध हो चुकी है। आज युवा शक्ति को संस्कृत साहित्य में समाहित इन नैतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को समझने की आवश्यकता है और उन्हें अपने आचरण में उतारने की ज़रूरत है।

बोहल शोध मंजूषा के जुलाई 2023 के विशेषांक में सम्मिलित आलेख 'संस्कृत संस्कृति एवं मूल्य संवर्धन' पर आधारित हैं और वर्तमान में मूल्यों के संवर्धन की ही आवश्यकता है जिससे यह विशेषांक अपनी सार्थकता सिद्ध करता है। बोहल शोध मंजूषा द्वारा शोध के क्षेत्र में किए जा रहे प्रयास निस्संदेह स्तुत्य हैं । जिनका लाभ लेखकों एवं शोधार्थियों को प्राप्त हो रहा है और आगे भी प्राप्त होता रहेगा।

बोहल शोध मंजूषा के अतिथि विशेषांक का उत्तरदायित्व प्रदान करने हेतु बहुत-बहुत आभार एवं समस्त शोधरत विद्वज्जन को अनंत शुभकामनाएं।

डॉ निशीथ गौड़,

असि. प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

कला संकाय, डी.ई.आई (डीम्ड विश्वविद्यालय), दयालबाग़, आगरा

विशेषांक सम्पादक की कलम से.....

भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, आध्यात्म, इतिहास, पुराण, भूगोल, राजनीति एवं विज्ञान की मूल स्रोत संस्कृत भाषा आज भी भारतवर्ष का गौरव एवं प्राण है। वेदों के रहस्यमय ज्ञान से लेकर साधारण जनजीवन के मनोरंजन से संबंधित पंचतंत्र की कथाओं तक जितना भी साहित्य आज उपलब्ध है, सब संस्कृत भाषा में ही सुरक्षित है। "सर्वे भवन्तु सुखिन:" के मध्यम से सभी का कल्याण एवं "वसुधैव कुटुम्बकम्" के मध्यम से विश्व बंधुत्व की अवधारणा के साथ साथ मानवीय मूल्यों की स्थापना करना संस्कृत की अनुपम देन है। शिक्षकों, शोधार्थियों, अभिभावकों, छात्र – छात्राओं, एवं अन्य पाठकों के मध्यम प्रत्येक नागरिक के हृदय में राष्ट्रीयता की भावना तथा मानवीय मूल्यों के अंकुर डालने हेतु गुगनराम एजुकेशन एवं सोशल वेलफेयर सोसाइटी द्वारा प्रकाशित अंतर्राष्टीय बहुभाषी पत्रिका 'बोहल शोध मंजूषा' का यह जुलाई अंक भाग एक समग्र रूप से 'संस्कृत, संस्कृति एवं मूल्य संवर्धन' विशेषांक नाम के अनुरूप ही मानवीय मूल्यों के लिए समर्पित एक यज्ञ है, जो संस्कृत, संस्कृति एवं मूल्य संवर्धन हेतु प्रकाशन की ओर से आहूत किया गया है जिसमे सम्पूर्ण भारतवर्ष के विभिन्न राज्यों शोधार्थियों एवं प्राध्यापकों ने इस विशेषांक के लिए अपने शोधालेख रुपी आहुतियां दी है।

इसके अतिरिक्त सामान्य अंक के लिए आप सभी ने पत्रिका परिवार को अपना अनुपम सहयोग दिया है। हम हृदय तल से सभी को धन्यवाद ज्ञापित करते है और आशा करते है कि भविष्य में भी आप सभी का सहयोग हमें इसी प्रकार मिलता रहेगा।

बोहल शोध मंजूषा विगत कई वर्षों से अनुसन्धान के क्षेत्र में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित किये हुए है। अनुसन्धान के क्षेत्र में नवीन आयामों के माध्यम से लोकप्रियता दिन प्रतिदिन बढती जा रही है। यह लोकप्रियता आप सभी के सहयोग एवं प्रेम की परिचायक है।

मैं आदरणीय प्रो. आनंद मोहन कुलसचिव डी. ई. आई. विश्वविद्यालय , दयालबाग, आगरा को धन्यवाद करती हूँ जिन्होंने अपने आशीर्वाद स्वरुप शुभकामना सन्देश भेज कर हमें प्रोत्साहित किया । साथ ही मैं बोहल शोध मंजूषा की कार्यकारिणी समिति को भी धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने मुझे अतिथि संपादक का उत्तरदायित्व प्रदान किया।

डॉ. वर्षा रानी

संस्कृत – विभाग

डॉ. भीमराव आम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 12-15

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संस्कृत शिक्षण में व्यतिरेकी भाषाविज्ञान की उपयोगिता

डॉ. रणजीत भारती

सहायक प्रोफेसर, भाषाविज्ञान विभाग, डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा, पिन कोड– 282004

सारांश :–

किसी भाषा संबंधी ज्ञान के दो पहलू होते हैं– पहला उस भाषा का भाषा वैज्ञानिक ज्ञान (जैसे– भाषा की सरचना एवं उसकी व्याकरणिकता आदि) एवं दूसरा उस भाषा कौशलों (जैसे– सुनना, बोलना, लिखना और पढ़ना) का ज्ञान। भाषिक ज्ञान के ये दोनों पहलू एक दूसरे से भिन्न होते हैं। यह भिन्नता शिक्षार्थी के व्यक्तिगत स्तर पर भी देखी जा सकती है। भाषा शिक्षण में सबसे ज्यादा बाधा मातृभाषा का व्याघात होता है। जिसे हम मातृभाषा और अन्य भाषा के व्यतिरेक के अध्ययन से स्पष्ट और सुग्राही बनाया जा सकता है। भाषा वैज्ञानिक अध्ययन से भाषाओं के ध्वनि, शब्द, वाक्य एवं व्याकरण संबंधी असमानता को विश्लेषित किया जाता है। जो भाषा सीखने में तीव्रता प्रदान करती है। इस शोध पत्र के माध्यम से भाषा के व्यक्तिरेकी भाषावैज्ञानिक ज्ञान एवं उसका संस्कृत या किसी अन्य भाषा को सीखने के लिए प्रयोग किए जाने की विधि को उदाहरण सहित वर्णित किया गया है। इसमें अध्ययन के लिए प्रश्नावली विधि का प्रयोग किया गया है जिसके अंतर्गत कुल सात प्रकार के प्रश्नों को लिया गया है। इस अध्ययन में पाया गया है कि ज्यादातर लोगों को दो भाषाएं तो आती है अर्थात भाषा कौशल का ज्ञान तो है, लेकिन उनको अपनी भाषा की वैज्ञानिकता के बारे में नहीं पता है। जिस कारण वे अपनी भाषा और संस्कृत में भाषिक व्यतिरेक (असमानता) बताने में असमर्थ थे।

मुख्य शब्द :– व्यतिरेकी भाषाविज्ञान, भाषावैज्ञानिक ज्ञान, संस्कृत, भाषा कौशल, शिक्षण, व्याकरणिकता।

परिचय :–

भाषा सीखने के लिए भाषा माध्यम का चुनाव मोटे तौर पर दो विधियों के अनुरूप किया जाता है–पहला प्रत्यक्ष विधि और दूसरा अप्रत्यक्ष विधि। प्रत्यक्ष विधि से सीखने या सिखाने के लिए जो भाषा सीखी जाती है वह स्वयं ही भाषा माध्यम होती है जबकि और अप्रत्यक्ष विधि में शिक्षार्थियों को किसी न किसी माध्यम भाषा का चुनाव करना पड़ता है। ज्यादातर भाषा के लिए शिक्षार्थी अपनी मातृभाषा के अनुरूप भाषा माध्यम का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के तौर पर हिंदी मातृभाषी संस्कृत सीखने के लिए हिंदी भाषा को माध्यम ही माध्यम भाषा चुनेगा। इसी प्रकार अंग्रेजी मातृभाषी संस्कृत सीखने के लिए अंग्रेजी को ही सीखने की माध्यम भाषा के रूप में चुनाव करेगा। ऐसे में हम यह मानकर चलते हैं कि शिक्षार्थी को अपनी मातृभाषा का ज्ञान होना चाहिए लेकिन वह ज्ञान संप्रेषण स्तर का होता है ना की भाषावैज्ञानिक स्तर का। भाषा के व्यतिरेकी अध्ययन का आधार भाषाविज्ञान होता है। अतः केवल संप्रेषण स्तर के ज्ञान के आधार पर हम भाषा शिक्षण में व्यतिरेकी विधि का प्रयोग नहीं कर सकते

हैं।

साहित्यिक सर्वे :-

व्यतिरेकी भाषाविज्ञान में व्यतिरेक शब्द का संस्कृत की 'रिच' धातु से बना है। जिसका अर्थ होता है 'अलग करना'। 'रिच' से पूर्व 'वि' (विशेष) तथा 'अति' (अत्यधिक) उपसर्ग और अंत में भाववाचक प्रत्यय 'घञ' जोड़ने से 'व्यतिरेक' (वि+अति+रिच+ घञ) शब्द बनता है तथा इसका अर्थ विरोध या असमानता है। 'व्यक्तिरेकी भाषाविज्ञान भाषाविज्ञान के उस प्रकार को कहते हैं जिसमें दो भाषाओं या भाषा रूपों की विभिन्न स्तरों पर तुलना करके उसके आपसी विरोध हो या असमानता (कंट्रास्ट) का पता लगाते हैं।' (तिवारी और बाला; 1983)। स्वामी विवेकानंद ने संस्कृत शिक्षा को अनिवार्य बताते हुए कहा है कि 'संस्कृत की अनिवार्य शिक्षा ही एकमात्र ऐसा साधन है जो हिंदू समाज को एकता के सूत्र में बांधने में सक्षम है।' (संस्कृत शिक्षण विधि, 1985)

शोध प्रविधि :-

शोध प्रपत्र में प्रश्नावली विधि का प्रयोग किया गया है जो उत्तर प्रदेश के 25 लोगों (पश्चिमी उत्तर प्रदेश) के साथ हुए प्रश्नावली एवं मौखिक वार्तालाप पर आधारित है। इसमें शामिल प्रतिभागियों का शैक्षिक स्तर इंटरमीडिएट से लेकर परास्नातक तक है। प्रश्नावली में भाषा सीखने से पूर्व मातृभाषा के भाषा वैज्ञानिक ज्ञान को जांचने के लिए पूछे गए कुल सात प्रकार के प्रश्नों को लिया गया है जो इस प्रकार है– (1) आप जो भाषा बोलते हैं उसमें कितने स्वर और व्यंजन हैं? (2) आपकी मातृभाषा में उच्चारण के आधार पर कितनी ध्वनियां हैं? (3) आपकी मातृभाषा में शब्दों की व्याकरणिक भेद कितने हैं? (4) आप भाषा विज्ञान से क्या समझते हैं? (5) क्या आप द्विभाषी हैं? (6) यदि आप द्विभाषी हैं तो जो दोनों भाषाएं जानते हैं तो क्या आप उन दोनों भाषाओं के बीच ध्वनि, शब्द या वाक्य स्तर पर असमान तथ्य बता सकते हैं? (7) भाषा सीखना और भाषा विज्ञान को आप एक ही मानते हैं या अलग–अलग?

विश्लेषण :- भाषा के निम्नलिखित स्तरों पर व्यक्तिरेकी विश्लेषण किया जा सकता है-

ध्वनि स्तर :- किसी भी भाषा के ध्वनियों का वैज्ञानिक अध्ययन ध्वनिविज्ञान कहलाता है यहां वैज्ञानिक कहने का अर्थ उसके भौतिक स्वरूप से है। ध्वनि का भौतिक स्वरूप किस प्रकार है अर्थात उसमें उसके उच्चारण में जो लहर बनती है उसका स्वरूप क्या है, उसका उच्चारण स्थान, प्राणत्व, घोषत्व आदि के बारे में अध्ययन किया जाता है। जैसे हिंदी की हिंदी और संस्कृत की वर्णमाला की ध्वनियों में अंतर है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से हिंदी में दस स्वर हैं जबकि वर्तमान संस्कृत में तेरह स्वर होते हैं। व्यंजन ध्वनियों में भिन्नता मिलती है जैसे हिंदी में 33 व्यंजन धनियां होती हैं जबकि संस्कृत में 34 व्यंजन धनियां होती है। ध्वनियों का निर्धारण भाषा विज्ञान की महत्वपूर्ण शाखा ध्वनिविज्ञान के आधार पर किया जाता है ना की लिपि के आधार पर। इसके अलावा बोलने में कुछ ध्वनियों में अंतर हो जाते हैं। पारसी शब्द 'अंदर' संस्कृत में अंतः हो जाता है। हालांकि दोनों का अर्थ एक ही होता है।

शब्द स्तर :- शब्द किसी भाषा की न्यूनतम अर्थवान इकाई होती है जो उस भाषा के कोश में मिलता है। जो एक रूप में भी हो सकता है और बहुरूपिम भी। शब्दों का वर्गीकरण उनके कई आधारों पर किया गया है। जैसे ध्वन्यात्मक विशेषताओं के आधार पर– इस आधार पर शब्द दो प्रकार के होते हैं– पहला एकाक्षरी शब्द, जैसे; फल, सुंदर, सफल आदि। दूसरा बहुआक्षरिक शब्द, जैसे; महत्वपूर्ण, सुव्यवस्था, संघटना, सहानुभूति आदि।

संस्कृत में शब्द और पद को अलग–अलग मान्यता है। संस्कृत के शब्द पूरी तरह से रुपावली का पालन करते हैं जबकि हिंदी में रुपावली के साथ–साथ रूप और रूप प्रक्रिया के नियम भी लागू होते हैं।

संस्कृत में शब्दों को नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात चार वर्गों में विभाजित किया गया है जबकि हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी के अनुरूप आठ भेद किए गए हैं। अर्थात संस्कृत में विशेषण और क्रिया विशेषण को संज्ञा और क्रिया में ही सम्मिलित किया गया है। जो इसकी संरचना को अन्य भाषा से व्यतिरेक (अलग) करती है। हिंदी और संस्कृत के कुछ उपसर्गों की संख्या और उनके अर्थ में भी असमानता होती है, जिसे व्यक्तिरेकी अध्ययन द्वारा समझा जा सकता है।

वाक्य स्तर :– हिंदी और संस्कृत वाक्य रचना में भेद होता है संस्कृत पूरी तरह रूपबद्ध भाषा होने के कारण इसमें वाक्य के काल, वचन, पुरुष आदि के लिए रुपावली होती है। अर्थात संस्कृत में पद क्रम लचीला होता है। इसमें पद क्रम बदलने से अर्थ में परिवर्तन नहीं होता है जबकि हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में या अंग्रेजी में पद क्रम बदलने से अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। जैसे; अंग्रेजी वाक्य पर विचार करें तो :–

Ram killed Ravan, Ravan killed Ram.

पता चलता है कि अंग्रेजी वाक्य में पद क्रम बदलने के आधार पर ही उसके अर्थ में भी परिवर्तन हो जाता है लेकिन संस्कृत में हम बिना अर्थ में परिवर्तन किए ही पद क्रम बदलकर वाक्य बना सकते हैं जैसे;

रामेण रावणः हतः। रावण रामेणः हतः।

इसमें दोनों वाक्य में पद क्रम बदलने के बावजूद भी इनके अर्थ में परिवर्तन नहीं होता है क्योंकि इसमें शब्दों के जो रूप है वह इनके क्रम को निर्धारित कर रहे हैं ना कि वाक्य की पूरी संरचना।

व्याकरणिकता के स्तर पर :– भाषा सीखने के लिए सामान्य तौर पर व्याकरण पर जो जोर दिया जाता है ना कि उसकी व्याकरणिक पर। भाषा का व्याकरण और उसकी व्याकरणिकता दोनों अलग–अलग होते हैं व्याकरण से हमें नियम ज्ञान का पता चलता है जबकि व्याकरणिकता भाषावैज्ञानिक अध्ययन का हिस्सा है जो वर्णनात्मक ज्ञान देता है। भाषा के प्रजनकता (जररेटीविटी) को समझने के लिए वर्णनात्मक ज्ञान जरूरी होता है। इससे शिक्षार्थी खुद से जांच कर सकता है कि वह कहां पर गलती कर रहा है।

जब चॉम्स्की ने व्याकरणिकता की अवधारणा पेश की तो उन्होंने स्वीकार्यता की अवधारणा भी पेश की। चॉम्स्की ने जोर दिया कि 'स्वीकार्य की धारणा को व्याकरणिकता के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए।' क्योंकि कभी–कभी हम ऐसे वाक्य बोल देते हैं जो संरचना के दृष्टि से तो ठीक होता है लेकिन अर्थ की दृष्टि से उस भाषा में स्वीकार्य नहीं होता है। अर्थात उस उस भाषा की व्याकरणिकता को खंडित करता है।

इसी प्रकार हिंदी और संस्कृत में वचन काल आदि व्यतिरेक होता है संस्कृत में तीन वचनों (एक वचन, द्विवचन और बहुवचन) का प्रयोग होता है जबकि हिंदी में दो वचनों (एकवचन और बहुवचन) का ही प्रयोग होता है। इसी प्रकार लिंग की संख्या में भी अंतर होने से हिंदी और संस्कृत में व्यतिरेक मिलता है। हिंदी में दो लिंग होते हैं जबकि संस्कृत में तीन होते हैं। व्याकरणिक भिन्नता को व्यतिरेकी भाषाविज्ञान द्वारा विश्लेषण कर शिक्षण को और अधिक बोधगम्य बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष :–

व्यतिरेकी भाषावैज्ञानिक विश्लेषण विधि का प्रयोग भाषा को शिक्षार्थी की मातृभाषा के माध्यम से सीखने

के लिए प्रयोग किया जाता है परंतु इसके लिए सबसे पहले शिक्षार्थी को अपनी मातृभाषा के वैज्ञानिक भाषा वैज्ञानिक ज्ञान का होना भी आवश्यक होता है। क्योंकि भाषावैज्ञानिक ज्ञान भाषा सीखने वालों के लिए एक निदानात्मक औजार के रूप में कार्य करता है। इसे ज्ञान को सीखने के लिए महत्वपूर्ण सूत्र ज्ञात से अज्ञात विधि या आगमन विधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। जिसमें शिक्षार्थी अपनी मातृभाषा के बारे में ज्ञान भाषा वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर नई भाषा को तीव्र गति से सीख सकते हैं।

संदर्भ सूची :-

1. चॉम्स्की, नोम (1965), वाक्य रचना के सिद्धांत के पहलू, मैसाचुएट्स, कैम्ब्रिज, एमआईटी प्रेस।
2. तिवारी, भोलानाथ, और बाला. किरण (1983) व्यतिरेकी भाषाविज्ञान, आलेख प्रकाशन, दिल्ली।
3. शर्मा, उषा, (1985), संस्कृत शिक्षणशमा, श्वाति पब्लिकेशन, जयपुर।
4. Azam Lotfi, Farzaneh (2020). Comparative study of common words of Sanskrit and Persian language. Journal of Foreign Language Research.

वेबसाइट :-

1. http://www.sanskrit-academy.com/alphabet.shtml
2. https://www.hmoob.in/wiki/Grammaticalit

मो. नं– 8650029885,

ईमेल– ranjeet.dbrau@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 16-23

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बहुतलीयावासीयभवनेभूमिचयनसिद्धान्ताः

डॉ. देशबन्धुः, सहायकाचार्यः,वास्तुशास्त्विभागः
विनय कुकरेती, शोधच्छात्रः, वास्तु शास्त्र विभागः
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालयः नवदेहली –१६

वास्तुशास्त्रंभारतस्यप्राचीनतमंवैज्ञानिकशास्त्रमस्ति।वास्तुशब्देननिवासस्थानंनिर्दिश्यते,अस्मिन्नेवक्रमेद्रष्टव्यमस्तियत्वास्तु शब्दस्यसाक्षादर्थोनिवासस्थानमेववर्तते।यतोहि,संस्कृतव्याकरणेअस्योत्पत्तिःवस्धातोअभवतयस्यप्रयोगःनिवासार्थेक्रियते।यथाशब्द कल्पद्रुमेवसन्तिप्राणिनोयत्र।वस्निवासेवसेरगारेणिच्च।इतितुण्।सचणित्। निवासस्यचिन्तनसमयेगृहस्येवचित्रंमनसिस्फुरति।वास्तुशा स्त्रस्यआरम्भोवैदिककालाद्एवभवति।अथर्ववेदःस्थापत्यवेदःएववास्तुशास्त्रस्यमूलमस्ति।वास्तुशास्त्रस्यदृष्ट्यागृहवास्तुचिन्तनेप्रथमंभू मिचयनकार्यंक्रियते।अस्यकारणात्भूमिचयनंमहत्त्वपूर्णेषुविषयेषुअन्यतममस्ति।भारतीयदर्शनानुसारंसंपूर्णस्याऽपिजगतःसृष्टिपञ्च-महाभूतादेवअजायत।अतःपृथिव्याःतथातत्स्थानांजीवानाञ्चउत्पत्तिःएतेभ्यएवजाता।पञ्चमहाभूतान्विनायःकोऽपिपदार्थःस्वमूलस्व रूपंनैवप्राप्नोति।

भूमिचयनंवास्तुशास्त्रस्यएकमभिन्नंअङ्गंवर्तते,यतोहियादृशेभूखण्डेगृहपतिःनिवसतितस्मात्भूखण्डादेवसर्वाधिकशुभाऽशु भयोःप्राप्तिर्भवति।आर्किटेक्चरइतिविषयेएनं Site Selection इतिनाम्नाऽपिकथ्यते।एतत्एकम्अत्यधिकंमहत्वपूर्णमङ्गंवर्ततेयतःअग्रिमनिर्माणादिकार्याणिसर्वाण्यपिअस्मिन्नैवस्थानेकर्तव्यानिभव न्ति,तथानिर्माणंयस्मिन्नधिकरणेकुर्मःतत्स्थलंकियत्सुरक्षितंवर्ततेइतिआलोचनमेवतीक्ष्णदृष्टियुक्तस्यवास्तुशास्त्रादिःकार्यंभवति।निर्मा णकार्यंयस्यांभूमौचितेभूखण्डेवाक्रियतेतत्रवस्तुतःतस्यस्थलस्यभौगोलिकी,सामाजिकीतथाआर्थिकीञ्चस्थितिंक्रियमाणस्यनिर्माणादि कार्यस्यलाभं, हानिंवाजनयति।

भूम्याः चयनार्थंतत्रापिदिशःसम्यकज्ञानंकृत्वाभूम्याःप्लवस्यचिन्तनंअपिक्रियते।अर्थात्भूखण्डस्यप्लवस्यविचारः क्रियतेयत् , अयंकस्यांदिशिवर्ततेइति।तस्यप्लवानुसारमेवभूखण्डस्यशुभाऽशुभस्यप्रदायकत्वंनिगद्यते।तत्रमहत्वपूर्णविचारोभवति- भूमिपृष्ठस्यविचारः । वास्तुशास्त्रेगजपृष्ठादिभूमेःप्रकाराःउक्ताः वर्तन्ते, यस्मिन्नाधारेभूखण्डस्यचयनंभूपतेःकृतेविशेषशुभफलदायकंभवति ।

गृहदोषाः - भूमिनिर्धारणस्यानन्तरंतत्रउपर्युक्तदोषाणामपिसाधुप्रकारेणज्ञानमावश्यकंभवति, यतोऽहिएतेदोषाएवसकलानांकष्टानांदुःखानाञ्चकारणीभूताःभवन्ति।अतःदोषज्ञानमपिअत्यधिकम्उपयुक्तंभवतितथैवयदिवयंदोषा न्जानीमः तर्हिगुणान्अपिमाज्ञातुंशक्नुमः।तेस्वयमेवअस्माकंदृष्टिगोचराः भविष्यन्ति।वास्तुशास्त्रीग्रन्थादिषुस्पष्टतयावर्णनंकृतंवर्तते, यत्निम्नदोषैःयुक्तस्यभूखण्डस्यसर्वदापरित्यागः करणीयः।

१.अस्थि-केश-तुषाकीटै:युक्ताभूमि:।

२. भस्मादिभि:प्रभाविताभूमि:, भूखण्डोवा।

३.कर्पट-अंगारादिभि:युक्ताभूमि:।

४. दुष्टजन्तुभि:तथादुष्टमनुष्यै:व्यापृताभूमि:।

एतादृशीभूमि:गृहपतयेसर्वथाअशुभफलदायिकाभवती।तथैवप्लवसम्बन्धिदोषाअपिनिगदिता:।भूमे:प्लवानुसारंकेचनदोषा:निर्धारिता:भवन्ति, तेनयुक्ता: भूखण्डा:त्याज्या:भवन्तिअथवातस्यप्लवस्ययथासम्भवंशास्त्रानुसारंनिर्माणंकर्तव्यंभवतिअन्यथाससर्वथादोषदायक:अर्थात्अशुभफलदायक:एवभवति।शास्त्रेउक्तंवर्ततेयत्आग्नेय-दक्षिण-नैऋत्यपश्चिम-वायव्यकोणेषुप्लवयुक्ताभूमि:दुष्टाकष्टकारिकाभवति।

रक्षोम्बुनाथकीनाश- मरुद्दहनदिक्प्लवा।
मध्यप्लवाचभूर्व्याधिदारिद्र्यमरकावहा।।
वह्निप्लवावह्निभयेमृतयेदाक्षिणप्लवा।
रुजेरक्ष:प्लवाप्रत्यक्प्लवाधान्यधनच्छिदे।।
कलहायप्रवासारोगायचमरुत्प्लवा।
मध्यप्लवातुभूमिर्यासर्वनाशायसाभवेत्।।[1]

अतएतादृशीभूमिसर्वदात्याज्याभवति।तथैवमध्यभागेप्लवयुक्ताभूमिरपिअत्यन्तंदु:खदायिकाभवति।प्लवजन्यफलंनिम्नप्रकारेणवर्तते।

स्पष्टार्थतालिका

प्लवदिश:	प्लवजन्यफलम्
पूर्व:	धनप्राप्ति:
आग्नेय:	अग्निभयम् (दाह:)
दक्षिण:	मृत्यु:
नैऋत्य:	रोग:
पश्चिम:	धन—धान्यनाश:
वायव्य:	दरिद्रता , कलह:, प्रवास: (परदेश)
उत्तर:	धनागमनम्
ईशान:	विद्यालाभ:
मध्य:	व्याधिप्राप्ति: , सर्वनाश: (कष्टम्)

श्रियंदाहंतथामृत्युंधनहानिसुतक्षयम्।
प्रवासंधनलाभञ्चविद्यालाभंक्रमेणच।।
विदध्यादचिरेणैवपूर्वादिप्लवतोमही।
मध्यप्लवामहीनेष्टानशुभाप्लवतत्परा।।[2]

[1]समरांगणसूत्रधार, अध्याय४८ (उद्धृतवास्तुसारअ.१०, श्लो. २-४)

ततश्चनारदमतानुसारंभूम्याःप्लवत्वज्ञानंतथातस्यप्रभावस्यचज्ञानंलब्धुंशक्नुमः।

गजपृष्ठादिसंज्ञकः भूमिः -

वास्तुशास्त्रवृष्ट्याभूखण्डस्यकृतेतस्यविभिन्नदिशःउन्नतिम्आधारीकृत्यअन्येबहवःसंज्ञाःवक्ताःवर्तन्ते।अस्यचत्वारःभेवाःवर्तन्ते, तेयथा-

१.गजपृष्ठः। **२.कूर्मपृष्ठः।**

३. दैत्यपृष्ठः। **४. नागपृष्ठः।**

एषुचतुर्षुभूमिषुगजपृष्ठभूमिःतथाकूर्मपृष्ठभूमिःभूपतयेशुभंइत्युक्तंवर्तते।भूपतयेयाभूमिः शुभावर्तते,तस्मादितरपृष्ठभूमिअवश्यंनिस्संदेहतयात्याज्याएवभवति।अस्यसरलतयाविवेचनंनिम्नतालिकायाः माध्यमेनक्रियते।

भूमिः	विभिन्नदिक्षुभूखण्डस्यस्थितिः।	भूमिफलम्
गजपृष्ठः	दक्षिण,पश्चिम,नैर्ऋत्यः,वायव्यादिषुउन्नताभूमिः।	लक्ष्म्याः, धनधान्यस्य, आयोश्चवृद्धिः।
कूर्मपृष्ठः	मध्यभागात्उन्नतातथाचतुर्भागात्अवनताभूमिः।	उत्साहलाभःप्रतिदिनंधनधान्यवृद्धिः।
दैत्यपृष्ठः	पूर्व,ईशान, आग्नेयोः उन्नतातथापश्चिमायांअवनताभूमिः।	धनस्य, पुत्रस्य, यशोश्चहानिः।
नागपृष्ठः	पूर्वपश्चिमयोःदीर्घः दक्षिणोत्तरयोःउन्नताचभूमिः।	मनसिअशान्तिः, मृत्युः, स्त्रिहानिः, पुत्रनाशः, शत्रुभयम्।

अनेनप्रकारेणभूमिपरीक्षणहेतोःभूखण्डपृष्ठस्यविचारेक्रियमाणेशुभफलदायिकायाःभूम्याःचयनंसरलतयाकर्तुंशक्यतेततश्चगृहपतिःसुखस्यलाभंस्वीकर्तुंशक्नोति।वास्तुशास्त्रानुसारंदिशाविदिशाश्चप्लवजन्यफलंतालिकामाध्यमेनस्पष्टंवर्तते।

स्पष्टार्थतालिका[3]

क्र०	वास्तुसंज्ञा	उन्नतदिशा :	प्लवदिशः	फलम्
१	पितामाहः	पूर्वाग्नेयोर्मध्ये	उत्तरवायव्ययोर्मध्ये	शुभः
२	सुपन्थः	दाक्षिणाग्नेयोर्मध्ये	पश्चिमवायव्ययोर्मध्ये	प्रशस्तः
३	दीर्घायुः	दाक्षिणनैर्ऋत्ययोर्मध्ये	उत्तरेशानयोर्मध्ये	कुलवृद्धिः
४	पुण्यकः	पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये	पूर्वेशानयोर्मध्ये	शुभः
५	अपथः	पश्चिमवायव्ययोर्मध्ये	पूर्वाग्नेयोर्मध्ये	शत्रुता,कलहः
६	रोगकृत्	उत्तरवायव्ययोर्मध्ये	दाक्षिणाग्नेयोर्मध्ये	रोगव्याधिश्च

[2]बृ.वस्तुमाला- श्लो. ३५, पृ. ९

[3]बृहद्वास्तुमाला, श्लोक११४-११५, उद्धृतगृहवास्तु-शास्त्रीयविधान, डॉ. देशबन्धुशास्त्री, पृ०-४४

७	अर्गल:	उत्तरेशानयोर्मध्ये	दाक्षिणनैर्ऋत्ययोर्मध्ये	पापनाशक:
८	शमशान:	पूर्वेशानयोर्मध्ये	पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये	कुलनाश:
९	श्येनक:	नैर्ऋत्य:, ईशान: ववायव्य:	आग्नेय:	मृत्यु:
१०	स्वमुख:	ईशान:,आग्नेय: ववायव्य:	नैर्ऋत्य:	दरिद्रता
११	ब्रह्मघ्न:	नैर्ऋत्य:,आग्नेय: वईशान:	पूर्वएवंआग्नेय:	प्राणभय:
१२	स्थावर:	आग्नेय:	नैर्ऋत्य:,ईशान:ववायव्य:	शुभ:
१३	स्थण्डिल:	नैर्ऋत्य:	आग्नेय:, वायव्य: वईशान:	शुभ:
१४	शाण्डुल:	ईशान:	आग्नेय:,वायव्य: वनैर्ऋत्य:	अशुभ:
१५	सुस्थान:	नैर्ऋत्य:,आग्नेय: वईशान:	वायव्य:	शुभ:
१६	सुतल:	पश्चिम:,नैर्ऋत्य: वआग्नेय:	पूर्व:	राष्ट्रवृद्धि:
१७	चर:	उत्तर:, ईशान: ववायव्य:	दाक्षिण:	शुभ:
१८	श्वमुख:	ईशान:, पूर्व: वआग्नेय:	पश्चिम:	शुभ:

अत: वास्तुशास्त्रीसर्वदाशुभदायिकाया: भूम्या:एवचयनंकुर्यात्नतुप्रतिकुलाया: अशुभफलदायिकाया:।तथैवयदिभूमि: अनुकूलानस्यात्तांभूमिम्अनुकूलतयापरिवर्तयित्वातादृश्यामेवभूखण्डेगृहनिर्माणंकुर्यात्।वर्तमानकालेनगरेगृहंनिर्मातुंजन:सम्पूर्णजीवने प्रयासंकुर्वन्गृहनिर्माणेएवस्वस्यसंपूर्णजीवनंव्यतीतंकरोति।एतादृश्यांस्थितौयदिभूखण्ड: वास्तुसम्बन्ध:नास्तितदावर्तमानकालिकै:वास्तुशास्त्रज्ञै: तंभूखण्डंशोधयित्वातंवस्तुसम्बद्धंकारयित्वैवगृहनिर्माणंकार्यंतदनुएवतत्रनिवासञ्चकुर्यात्।भूमिचयनेकर्तव्येअत्यधिक:सरलतम:उपा य:वर्तते,य: वास्तुशास्त्रज्ञै:आचार्यै:पूर्णत:प्रमाणीकृतंवर्ततेअस्यांस्थितौवास्तुशास्त्रेप्राकृतिकशक्ते:तथासकारात्मकनकारात्मकोर्ज:अनुभवद्वाराभू म्या:चयनंकर्तव्यमितिविश्लेषितंवर्तते।तच्चगर्गादिवास्तुशास्त्रज्ञै: उच्यते -

मनसश्चक्षुमोर्यत्रसन्तोषोजायतेभुवि।
स्यांकार्यंगृहंसर्वैरितिगर्गादिसम्मतम्।।[4]

सर्वेषामपिमहर्षिणामिदमेकंमतंवर्ततेयत्यस्मिन्भूखण्डेप्राप्तेसतिमनसिप्रसन्नताया: अनुभवोजायते, नेत्रयो:शान्ति:तथाउल्लास:आगच्छति, उल्लासस्यप्रस्फोटोजायते,तादृशींभूमिंनकदापित्यजेत्, तत्रैवयथोचितंगृहादिकंनिर्मायझटितितत्रैवनिवासंकृत्वातस्यउपभोग:कर्तव्य:इति।

भूमिचयनेपञ्चमहाभूतानांमहत्वम्-

पञ्चमहाभूतेषुपृथ्वी-जल-तेज-वायु-आकाशानांगणनाक्रियते।प्रायेषुवस्तुषुएते पञ्चअपिस्वस्यनिश्चितमात्रायांतिष्ठन्ति।कस्यापिएकस्यअधिकतायांतत्वस्तुतदरूपेणैवदृश्यते।

वास्तुशास्त्रस्यदृष्ट्यापिआचार्यै:उन्नतिम्सन्तुष्टिंतथासुविधानाञ्चप्रयोगंकृत्वाऽपिपञ्चभूतानांतथाप्रकारेणसमायोजनम्चिरा युप्रदायकञ्चभवति।वस्तुत:पश्यामश्चेत्वास्तुशास्त्रस्यप्रमुखमुद्देश्यंएतत्वर्ततेयत्मानवजातीनांसुरक्षाया:तथासुविधाया:कृतेभवनादिनिर्मा

[4]बृ. वस्तुमाला, श्लो. ९३, पृ. १८

णकरणंवर्तते।तादृशभवननिर्माणेमुख्यतःपृथ्वी-जल-तेज-
वायूनामुपयोगोजायतेतथाएतेषामुपयोगेनसहैवस्वतएवआकाशतत्वमपिस्वस्थानंकारयत्येवइत्यत्रनैवसंदेहलेशोऽपिवर्तते।शास्त्रीयदृ
ष्ट्यासर्वप्रथमंआकाशउत्पद्यते।अग्निःआपःअर्थात्जलमुत्पद्यते।ततःजलादेवपृथिवीउत्पद्यते।इयमेवसृष्टेःउत्पत्तिप्रक्रियावर्तते।तथैवइयमे
वप्रक्रियामातुःगर्भादारभ्यअन्तिमकालेचितारोहणपर्यन्तंसमाहिताभवति।एतानिएवपञ्चतत्वानियथाक्रमंम्अस्माकंअन्तर्बहिश्चवर्तन्ते।

भूखण्डेपञ्चतत्वस्यस्थानम्

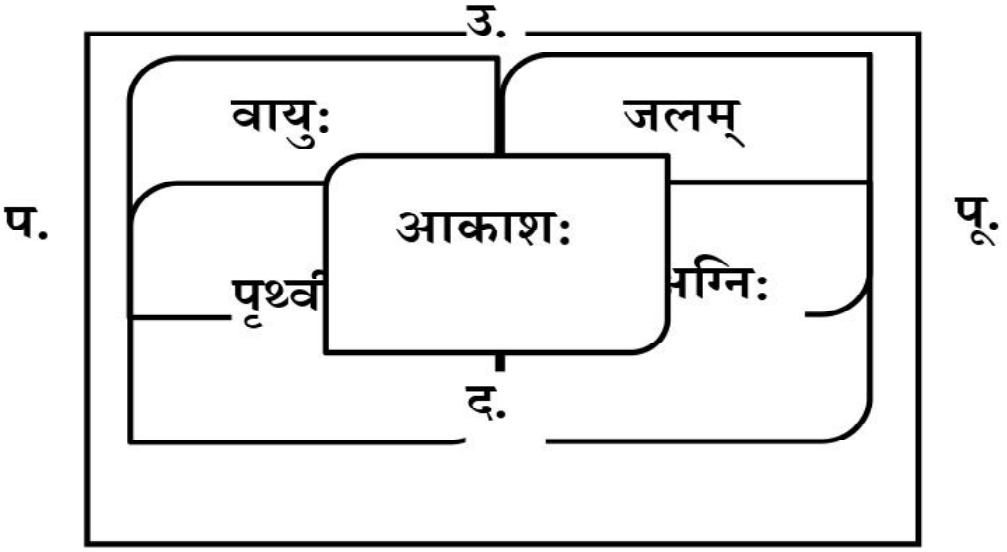

आकाशः -

पञ्चमहातत्वेषुअयमाकाशःअत्यन्तंबृहत्तथाव्यापकञ्चतत्वंवर्तते।आकाशःइत्यस्यसामान्याभिप्रायःरिक्तस्थलमितिभवति
अस्मिन्लोकेनैवतादृशंस्थलंलभ्यतेयत्रआकाशतत्वंनस्यात्यतोऽहिविनारिक्तस्थलंकस्यापिवस्तुनःअस्तित्वमपिवक्तुंनशक्यते।तस्यक
ल्पनाकरणमपिमुर्खताजायते।प्रत्येकक्रियायाःतथागतिविधेश्चकृतेरिक्तस्थलमवश्यमपेक्षितंभवति।तदेवस्थलम्आकाशइतिउच्यते।सम्पू
र्णेऽस्मिन्लोकेयत्किमपिअधुनादृष्टिगोचरंवर्ततेतत्सर्वम्आकाशस्यप्रभावादेववर्ततेयतोऽहियदिलोकेरिक्तस्थानंनस्यात्तर्हिअन्तरिक्षःतर
ङ्गादयःसम्पूर्णसौरपरिवारःग्रहोपग्रहादयःप्रकृतिःमानवःप्राणिनःनकेऽपिस्युः।वास्तुशास्त्रीयदृष्ट्याऽपिपश्यामश्येत्आकाशःअत्यधिक
मावश्यकोभवतियतोऽहिआकाशाभावेनिर्माणमपिकुत्रस्यात्।

वर्तमानसन्दर्भेभूम्याउपरिआकाशस्यन्यूनतावशादेवबहुतलीयावासेषुवृद्धिःजातातथैवसूक्ष्मतयाबहुतलीयभवनानांकृतेऽपि
आकाशएवप्रथमतादृशंतत्वंवर्ततेयतःनिर्माणायप्रेरणांप्राप्यते।भवनानांनिर्माणेएकशाल-द्विशाल-त्रिशालतथैवबहुश्रेणियुक्तंभवनम्-
द्वारम्-
गवाक्षम्इत्यादीकंतथाबहिस्थानंरिक्तंस्थापयितुंचआवश्यकंभवति।एतत्सर्वमपिभवनादीनांनिर्माणेआकाशतत्वस्योपयोगितांदर्शयति।

वायुः -

लोकेऽस्मिन्वायुंकोवानजानीयात्प्राणीनांजीवितत्वम्मृतत्वंवापरीक्षितुमपिप्राणाख्यवायुंवापरीक्षयन्ति।अतएववायोः
जीवनेनसहअत्यन्तंघनिष्ठःसम्बन्धोवर्तते।शास्त्रेषुवायोः पञ्चप्रकारत्वंलभ्यतेयेशरीरेगतिप्रदानंकुर्वन्ति।तेचयथा**प्राणवायुः, अपानवायुः, व्यानवायुः, उदानवायुः, समानवायुरिति।**

वायुः
सर्वेषामपिप्राणीनांजीवनस्यतथाजैविकगतिविधेश्चकृतेअनिवार्यतत्वंवर्तते।अस्माकंकृतेवातावरणेशतप्रतिशतंअक्सिजनतथा
(१८%)

अष्टादशभागनाइट्रोजनस्यापिआवश्यकताभवति।अतःवास्तुशास्त्रीयदृष्ट्याऽपिवायोःअत्यधिकंमहत्वंवर्ततेतथाभवनादिनिर्माणेगवाक्षम्,
द्वारम्इत्यादीनांपार्श्वेवृक्षदीनांस्थितेःवर्णनंकृतंवर्तते।येनमानवजीवनेप्राणवायोःसञ्चारःउत्तमरूपेणजायते।एतादृशप्रकारेणभवनादिनिर्माणेवायुतत्वस्यसाधुरूपेणउपयोगःकर्तुंशक्यते।

तेजः –

वायोःतेजसःउत्पत्तिःजायते।तेजोनामप्रकाशःकान्तिइत्यर्थः।मानवशरीरेयदितेजोविद्यमानोभवति।तदैवव्यक्तिःजीवितोभवति।तथैवमरणानन्तरंमानवशरीरंशीतंजायते।अर्थात्अग्निः/तेजोअस्माकंशरीरेतथासर्वस्यामपिप्रकृतौएवप्रकाशसञ्चरति।सम्पूर्णपृथिव्यांउर्जएकस्याःप्राकृतिकंतथासर्वाधिकोर्जःस्रोतःसूर्यएववर्तते।सूर्यएवपृथिव्यांजीवनस्यसंचालनेकर्तव्येअत्यधिकंविशिष्टंयोगदानंकरोति।वास्तुशास्त्रदृष्ट्याऽपिभवनादीनांनिर्माणेअग्नितत्वेविशेषध्यानंदीयतेतथैववास्तुशास्त्रेआग्नेयकोणअस्यैवअग्नितत्वस्यप्रधानतायाःसूचकोवर्तते।

वास्तुशास्त्रेसूर्यस्यप्रकाशः, जलवायुः, वातावरणंतथाभौगोलिकीस्थितिइत्येतेषांसर्वेषांप्रकृत्यानुसारेणैवभवनादिनिर्माणेविचारःक्रियते।अस्मिन्शास्त्रेद्वारस्य,वातायनस्य, गृहविशेषस्यअन्येषाञ्चविचारःअग्नितत्वंमनसिनिधायक्रियतेयेनकस्याःविशःकियान्प्रकाशःभवनेप्रविशतिइतिज्ञानंतथैवगृहपतेःकृतेकिञ्चअत्यधिकंलाभदायकंवर्ततेइत्यादिज्ञानानुसारंगृहादिनिर्माणंकर्तुंशक्यते।अतः
तेजःमनुष्यानाम्अन्येषांप्राणीनांप्रकृतेःकृतेचअत्यधिकम्उपयोगायभवति।

जलम् –

जलस्यउत्पत्तिअग्नितःजायते।अस्माकंजीवनेजलस्यस्थानंकियत्महत्वपूर्णंवर्ततेइतितुसर्वैरपिज्ञायतेएव।अस्मद्शरीरेऽपिसप्ततिःप्रतिशतंजलमेवभवति।यद्यपिव्यक्तीनांजीवनेप्राणवायुःअत्यधिकंमहत्वपूर्णंभवति।यतोऽहिविनाप्राणवायुंव्यक्तिःनिमेषमात्रमपिजीवितुंनसमर्थोभवति।तथापि**जलमेवजीवनम्**इत्युक्तिः
जलस्यमानवजीवनेउपयोगितांतथाजलस्यआवश्यकताञ्चप्रदर्शयति।येषुगृहेषुजलंलभ्यतेतेषुजीवनस्यअस्तित्वम्अन्वेष्टुंशक्यते।अस्मिन्विषयेज्ञानिनःइदानीमपिअनुसन्धानंकुर्वन्तएववर्तन्ते।मानवजीवनस्यविस्तारःतत्रैवआधिक्येनजायते।यत्रतन्निकटेजलस्यव्यवस्थाभवेत्।अतएववास्तुशास्त्रज्ञाअपितादृशस्थलेएवनगरस्य, ग्रामस्य, गृहस्यअन्यस्यकस्यवानिर्माणायप्रेरयन्तियत्रजलस्यव्यवस्थासरलतयाभवेत्।

वास्तुशास्त्रानुसारंपश्यामश्चेत्–
ईशानंजलतत्वस्यदिक्ईतिश्रूयते।भूमिगतजलस्यकृतेइयंदिगेवसर्वोत्तमाभवति।इदंजलतत्वमेवसर्वाधिकमस्थिरतत्वंवर्तते।तत्वमिदंतापमानस्यअनुरूपेणस्वस्थितिमपिपरिवर्तयति।जलस्यस्वभावःनिरन्तरंवहनशीलत्वरूपोवर्तते।कस्यापिवस्तुनःनिर्माणार्थंजलमत्यावश्यकंभवति।विश्वस्यसर्वासांसभ्यतानांविकासः जलस्रोतानांसमीपएवजातः।अर्थात्जलस्रोतानुसारमेवसभ्यतादयःअत्यन्तंविकसिताजाताइत्यर्थः।यथा–
सिन्धुधाटिसभ्यतासिन्धुनद्याःतटेविकसिताजाता।तथैवआर्यसभ्यतागंगायाःतथायमुनायाःनद्याःतटे।मिश्रसभ्यतायाःविकासःनीलनद्याःतटेजातःतथैवइराक़मुस्लिमसभ्यतायाःविकासःफरातदजलायाश्चनद्याःतीरेआसीत्।चीनीसभ्यताहांगहोतथायांग–सी–
कियांगनद्याःतटेविकसिताआसीत्।[5]अतएववास्तुनिर्माणेऽपिजलतत्वस्यमहत्वम्अचिन्तनीयंवर्तते।प्रत्येकस्मिन्नपिभवनेजलस्यकृतेनलम्, कूपः, सरः इत्यादीनिसर्वाणिअपिजलतत्वमेवमनसिनिधायविधीयन्तेजनाःसर्वाण्यपिकार्याणिकुर्वन्ति।

---

[5]रहस्यावरणसेमुक्ति–वास्तु , अश्विनीकुमार, अ. ४, पृ.७२

पृथिवी -

भारतीयपरम्परायांपृथिवींमाताइत्यपिनिगदन्ति।**माताभूमि:**

पुत्रोऽहंपृथिव्या:[6]इति।इयंपृथिवीअपिमात्रातुल्यमेवमानवजीवनस्यकल्याणाय,

जीवनानांकृतेसुखंसुविधांचप्रददाति।ऋतेपृथिवींआवासस्यकावार्तानकस्यचिदपिनिर्माणस्यसम्भवोवर्तते।विनापृथिवींजीवनस्यकल्प नामपिकर्तुंनशक्नुम:।पृथिव्या:स्वस्यएकंनिश्चितंस्वरूपंतथानिश्चित:भावश्चवर्ततेतथैवतस्या:निश्चितापरिधिरपिवर्तते।वास्तुशास्त्रेनैर्ऋत्य दिशंपृथ्वीतत्वंनिगदन्ति।नैर्ऋत्यदिशंतामसगुणप्रधानामपिनिगदन्ति।अस्यअर्थ:वर्ततेअंधकार:।यथाअस्माकंजन्मदात्रीमाताअस्मान्शि शुन्स्वगर्भेधारयतितथाइयंपृथिवीमाताऽपितथैवसर्वाण्यपिजीवान्भवनान्वास्तुनिर्माणादीन्चस्वस्मिन्धारयति।पृथिव्यागुरुत्वाकर्षणशक्ते: तथाचुम्बकीयशक्तेश्चकेन्द्रभूतावर्तते।

पृथिवींइमांशक्तिंस्वस्मिन्अक्षेबहुकालात्भ्रमणंकृत्वालब्धावर्तते।यद्यस्यांपृथिव्यांइयंशक्ति:नस्यात्तर्हिभवनादिनिर्माणम्अक ल्पनीयंस्यात्।अत: पृथिव्या:कथम्उपयोग:कर्तव्य:इतिवास्तुशास्त्रेसर्वप्रथममेवविचार्यते।यथाभूमिपरीक्षणम्, भूखण्डविस्तार:, शुभाशुभावविचार:,मृत्तिकाया: गुणवत्वम्, भूमिप्लव:, मार्ग:, तथावेध:इत्यादि।

नवपदवास्तुमण्डलेपञ्चतत्वानि

वायु:	जलम्+ वायु:	जलम्
वायु:+ पृथिवी	आकाश: + अन्यचत्वारितत्वानि	जलम् + अग्नि:
पृथिवी	अग्नि: + पृथिवी	अग्नि:

एवंप्रकारेणस्पष्टंभवतियत्वास्तुशास्त्रानुसारंयदिभवननिर्माणात्पूर्वंभूमिचयनसमयेविभिन्नानांवास्तुसिद्धान्तानांएवंपञ्चमहा भूतानांसामञ्जस्यंद्रष्टव्यंभवति।यतोहिएषासृष्टि:पञ्चमहाभूमिभ्यएवनिर्मिताभवननिर्माणमपितस्यसृष्टे:भागअस्ति।येनभवननिर्माणेअ धिकाधिकसुविधाप्राप्तुंशक्यतेएवञ्चजीवनेसुखसमृद्धि:, ऐश्वर्यंचवर्धते।निम्नलिखिततालिकायांस्पष्टंवर्तते।

स्पष्टार्थपञ्चतत्वस्यतालिका

तत्वा: → विशेषता: ↓	**आकाश:**	**वायु:**	**तेज:**	**जलम्**	**पृथिवी**
सामान्यगुण:	शब्द:	शब्दस्पर्शश्च	शब्दस्पर्शरूपंच	शब्दस्पर्शरूपरस-श्च	शब्दस्पर्शरूपरसगन्धश्च
विशेषगुण:	शब्द:	स्पर्श:	रूपम्	रस:	गन्ध:
चिह्नम्					

[6]अथर्ववेदसं. १२.१.१२

वास्तुदिशा	मध्यः	वायव्यम्	आग्नेयः	ईशानः	नैर्ऋत्यः
अङ्गम्	वाणी	हस्तम्	पादः	गुदाभागः	प्रजननांगम्
वास्तुकलात्मक-क्षेत्रम्	शान्तिः	जलवायुः	प्रकाशः	मलकरि - कार्यम्	भूपरिदृश्यम्
सम्बन्धितम् स्थलम्	ध्वनिविज्ञानम्	वातानुकूलम्	प्रकाशः, वर्णः, चिकित्सा	जलस्यापूर्तिः	बृक्षादयःगन्धः
वस्तुविषयिकी टिप्पणी	भवनस्यउन्नतिः रिक्तस्थानम्, मानसिकरोगः, अवसादः	वायुः , तापमानम् , प्राणवायोःमात्रा , वायुजनितःरोगः	शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक-उर्जायाःस्रोतः, बहवःरोगः	जीवनस्यस्रोतः, विकासेलाभकारी, भावनस्यजल व्यवस्था	भूखण्डप्रकारः, प्लवः, स्थानविशेषस्यनिर्माणसामग्रीइत्यादि

संदर्भग्रन्थसूची

बृहद्वास्तुमाला : श्रीरामनिरोहद्विवेदीएवंडॉ. ब्रह्मानन्दत्रिपाठी, चौखम्बासुरभारतीप्रकाशनवाराणसी, संस्करण-२०१२

भारतीयवस्तुशास्त्रकाइतिहास : डॉ. विद्याधर, ईस्टर्नबुकलिंकर्सडेल्ली, संस्करण-२०१०

वास्तुसार: : डॉ. देवीप्रसादत्रिपाठी, ईस्टर्नबुकलिंकर्सडेल्ली, संस्करण-२०१६

वास्तुशास्त्रविमर्श : डॉ. चंद्रमोहनझा, चौखम्बाविद्याभवनप्रकाशनवाराणसी, संस्करण-२००७

वास्तुप्रबोधिनी : डॉ. विनोदशास्त्री, मोतीलालबनारसीदासदिल्ली, संस्करण-२०११

भारतीयवास्तुशास्त्र : प्रो. शुकदेवचतुर्वेदी, श्रीला. ब. शा. रा. सं. वि. दिल्ली, संस्करण-२००४

गृहवास्तुशास्त्रविधान : डॉ. देशबन्धुशास्त्री, विद्यानिधिप्रकाशनदिल्ली, संस्करण- २०१३

रहस्यावरणसेमुक्तिवास्तु : अश्विनीकुमार, एल्फ़ापब्लिकेशनदिल्ली, संस्करण-२०१४

वास्तुशास्त्रविमर्श : शोधपत्रिकादशमपुष्प, श्रीला. ब. शा. रा. सं. वि. दिल्ली, संस्करण-२००१७

वास्तुशास्त्रविमर्श : शोधपत्रिकाद्वादशपुष्प, श्रीला. ब. शा. रा. सं. वि. दिल्ली, संस्करण-२००१९

नाम-डॉ. देशबन्धु: सहायकाचार्य,वास्तुशास्त्रविभाग, श्रीलालबहादुरशास्त्रीरष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालय।

नाम-विनयकुकरेती, शोधछात्र

विश्वविद्यालय- श्रीलालबहादुरशास्त्रीरष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालय।

पता-१७०, GH- ५&७, द्वारसंख्य-२, पश्चिमविहार, दिल्ली, ११००८७

ई॰मेल-ASTROLOGRVKSHASTRI@GMAIL.COM

मो॰नम॰– 888.22.888.92

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 24-29

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ज्योतिषशास्त्रे वर्णिताः भौगोलिकसिद्धान्ताः

गिरिराज शर्मा

शोधच्छात्रः, ज्योतिषविभागः, केन्द्रीय–संस्कृत–विश्वविद्यालयः, जयपुर परिसरः, जयपुरम् (राजस्थानम्)

ज्योतिषशास्त्रम् अनन्तब्रह्माण्डस्य रहस्यान् उद्घाटयति। ब्रह्माण्डस्य गतिस्थित्योः सम्पूर्णविवरणं ज्योतिषशास्त्रे वर्तते । अस्माकं पृथिवी अपि तस्यैव ब्रह्माण्डस्य भागः विद्यते। ज्योतषशास्त्रस्य सिद्धान्तसंहितास्कन्धयोः पृथिव्याः भौगोलिकस्थितिः विशदतया व्याख्याता।

पृथिव्याः आकारः- ज्योतिषशास्त्रे पृथिवी गोलाकारा कथिता । ज्योतिषग्रन्थेषु अनेकत्र पृथिव्याः गोलत्व विषये प्रमाणानि उपलभ्यन्ते । यथा सूर्यसिद्धान्ते –

मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति ।

विभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ।। इति[1]

पञ्चमहाभूतमयस्तारागणपञ्जरे महीगोलः ।

खेऽयस्कान्तान्तस्थो लोह इवावस्थितो वृत्तः ।। इति[2]

वृत्तभपञ्जरमध्ये कक्ष्यापरिवेष्टितः खमध्यगतः ।

मृज्जलशिखिवायुमयो भूगोलस्सर्वतो वृत्तः ।। इति च[3]

इत्येतेषु सर्वेषु कथनेषु भूमेः आकारः गोलोऽस्तीति कथितः। भूमिगोलोऽयं मृदा-जल-पावक-वायु-आकाशादिमहाभूतैः निर्मितः । स चाकाशे वृत्ताकारनक्षत्रमण्डलस्य केन्द्रे ग्रहकक्ष्याभिरावृतः स्थितोऽस्ति । अस्य पृथिवीगोलस्योपरि चतुर्दिक्षु ग्राम-नगर-पर्वत-उद्यान-देवायातनानिव्यापतानि सन्ति । इयं भूमिराकाशे स्वात्मशक्त्या आकाशे तिष्ठति, सर्वान् गुरुपदार्थान् च स्वधरातलं प्रति आकृष्यति । यद्यपि पृथिवी गोलाकारा वर्तते तथापि तस्याः धरातलस्य ९६ अंशभागः समतलः दृश्यते । विद्यते तथापि अस्याः धरातलं समतलं दृश्यते ।

---

[1]सूर्यसिद्धान्तः, भूगोलाध्यायः, श्लो.३२

[2]पञ्चसिद्धान्तिका, १३.१

[3]आर्यभटीयम्, गोलपादः, श्लो.६

पृथिव्याः परिधि-त्रिज्या-व्यासाश्च- सूर्यसिद्धान्तस्यानुसारंभूगोलस्य त्रिज्या ८०० योजनानि वर्तते, अतः द्विगुणितया त्रिज्यया व्यासः जायते । अनेन पृथिव्याः व्यासः १६०० योजनानि सिद्ध्यति । दशगुणितव्यासयोजनानां वर्गमूले कृते भूपरिधिमानं आयाति । अर्थात् भूपरिधि $=\sqrt{१०\times \text{भूव्यासः}^{२}}$ इति स्वरूपं जायते[4] ।

भास्कराचार्यस्य मतानुसारं निरक्षदेशात् पृथिव्याः षोडशांशे उज्जयिनी अवस्थितास्ति । निरक्षोज्जयिन्योरन्तरम् उज्जयिन्याः अक्षांशाः भवन्ति । अतः अक्षांशाः षोडशभिर्गुणिताः स्थानीयभूपरिधिः भवति[5] । $\frac{३६०\ (\text{अंशात्मकभूपरिधिः})}{१६} = २२।३०$ उज्जयिन्याः अक्षांशाः ।

अतः $\frac{\text{भूपरिधिः}}{१६}$ अक्षांशाः, अक्षांशाः $\times$ १६ = स्थानीयभूपरिधिः।

पृथिव्यां पाताल-सुमेर्वादीनामावस्थानानि – भूगोलस्यान्तरिकपुटेषु अत्यन्तमानोहराः पातालादिसप्तलोकाः सन्ति, यत्र स्वयमेव प्रकाश्यमानाः वृक्षा वर्तन्ते, तेषु लोकेषु नागाः असुराश्च निवसन्ति । भूमौ नानारत्नेभ्यः सुशोभितः, जाम्बूनदमयः भूमिगोलान्तर्गतः सुमेरुपर्वतः अस्ति । सुमेरुपर्वतस्योत्तरभागे इंद्रादिदेवाः दक्षिणभागे चासुराः निवसन्ति । एतम् सुमेरुपर्वतं पारितः मेखलेव महासागरः वर्तते यो हि देवानां दानवानाञ्च क्षेत्रस्य विभागं करोति[6] ।

भूगोले पुरनिवेशः- मेरोः मध्यभागे समुद्रस्य तटीयप्रदेशे तुल्यान्तरे जम्बूद्वीपस्य पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तरदिक्षु चातस्रः नगर्यःस्थिताः सन्ति । भूमेः चतुर्थांशे भद्राश्ववर्षे "यमकोटी" इति नामधेया स्वर्णप्रकारयुता नगरी अवस्थिता वर्तते । दक्षिणे भारतवर्षे "लंकापुरी", पश्चिमे च केतुमालवर्षे "रोमकपुरी" वर्तते । भूमेः उत्तरदिशि कुरुदेशे "सिद्धपुरी" स्थितास्ति । सिद्धपुर्यां दुःखैर्विमुक्ताः सिद्धाः महात्माश्च निवसन्ति । एताः चतस्रनगर्यः भूपरिधौ चतुर्थांशेषु स्थिताः सन्ति । विषुवत्काले सूर्यः नगरीणामुपरि भ्रमति[7] ।

ध्रुवतारायाः संस्थानम् – मेरोः उभयतः उत्तरदक्षिणध्रुवतारे आकाशे खमध्यगते भवतः, निरक्षदेशीयाः लोकाः ध्रुवद्वयं क्षितिजगतं पश्यन्ति[8] ।

---

[4]सूर्यसिद्धान्तः, मध्यमाधिकारः, श्लो.५९

[5]सिद्धान्तशिरोमणिः, गोलाध्यायः, भुवनकोशः, श्लो.१५-१६

[6]सूर्यसिद्धान्तः, भूगोलाध्यायः, श्लो.३४-३६

[7]सूर्यसिद्धान्तः, भूगोलाध्यायः, श्लो.३७-४२

[8]सूर्यसिद्धान्तः, भूगोलाध्यायः, श्लो.४३

सप्तसागराः सप्तद्वीपाश्च - क्षारसमुद्रतसंलग्नजंबुद्वीपस्य दक्षिणभागे अन्येषां षड्द्वीपानां स्थितिः कथिता अस्ति। भूगोले दुग्धसागरः, दधिसागरः, घृतसागरः, इक्षुसागरः, मद्यसागरः, जलसागरश्च स्थिता सन्ति। भगवतः वासुदेवस्य क्षीरसागरे सदैव निवासः भवति। द्वयोः द्वयोः समुद्रयोर्मध्ये वलयाकाराः सप्तद्वीपाः अवस्थिताः सन्ति। लवणसमुद्रस्यानन्तरं दुग्धसमुद्रः वर्तते। सुस्वादुजलस्य सागरे वडवाग्निः भवति। अतल-वितल-सुतल-तलातल-महातल-रसातल-पातालादिसप्तलोकाः अस्मिन् एव भूलोके स्थिताः सन्ति। एतेषु पातालादिलोकेषु असुरगणै सह वसुक्यादिसर्पाः दैदीप्यमानमणियुक्ताः सदैव निवासन्ति। क्षारक्षीरसमुद्रयोर्मध्ये शाकद्वीपः, क्षीरदधिसमुद्रयोर्मध्ये शाल्मलद्वीपः, दधिघृतसमुद्रयोर्मध्ये कौशद्वीपः, घृतेक्षुसमुद्रयोर्मध्ये क्रोञ्चद्वीपः इक्षुरसमद्यसमुद्रयोर्मध्ये पुष्करदीपः संस्थितोऽस्ति[9]

भास्कराचार्यानुसारं जम्बुद्वीपस्य नवखण्डानि – निरक्षदेशीयलंकानगरात् उत्तरदिग्भागे हिमलायपर्वतः संस्थितः अस्ति। एतस्माद् हिमालयपर्वताद् उत्तरदिशि एकोऽन्यः द्वितीयः पर्वतः हेमकूटः वर्तते। पुनः हेमकूटपर्वतात् उत्तरदिशि तृतीयः निषधपर्वतः विद्यते। ऐते पर्वताः सागरपर्यन्तं दैर्घ्यवन्तः सन्ति। एतेषां पर्वतानां मध्ये द्रोणिसंज्ञकदेशाः विद्यन्ते। तेषु देशेषु सर्वप्रथमं भारतवर्षम्, तदुत्तरभागे किन्नरवर्षम्, ततो उत्तरदिशि हरिवर्षम् स्थितमस्ति। एकमेव सिद्धपुरतः उत्तरदिशि शृङ्गवान्-पर्वतः, तस्योत्तरभागे श्वेतगिरिः, श्वेतगिरेः उत्तरदिशि नीलगिरिपर्वतः वर्तते। ऐते पर्वताः अपि महासागरपर्यन्तं दैर्घ्यवन्तः सन्ति। तेषां पर्वतानां मध्यभागे क्रमशः कुरुवर्षम्, हिरण्मयवर्षम्, रम्यवर्षञ्चेते देशाः स्थिताः सन्ति। अर्थात् सिद्धपुरतः उत्तरदिशि कुरुवर्षम्, तस्मात् कुरुवर्षाद् उत्तरदिशि हिरण्मयवर्षम्, हिरणमयवर्षाद् उत्तरदिशि रम्यवर्षम् विद्यते। यमकोटिनगरात् सौम्यदिशि "माल्यवान्"गिरिः वार्तते। स पर्वतः निषधनीलपर्वतपर्यन्तं दैर्घ्ययुक्तः अस्ति। माल्यवान्-गिरेः समुद्रस्य च मध्ये भद्राश्ववर्षम् अवस्थितः वर्तते। निरक्षदेशीयाद् रोमकदेशाद् उत्तरदिशि गन्धमादनपर्वतः, गंधमादनस्य समुद्रास्य च मध्यभागे केतुमालवर्षमस्ति[10]। एवम्प्रकारेण निषध-नील-माल्यवान्-गन्धमादन-ऐरावतादिभिरावृतं "इलावृत्तम्"इत्याख्यं भूमौ नवमखण्डम् अस्ति। यथोक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ-

---

[9]सिद्धान्तशिरोमणिः, गोलाध्यायः, भुवनकोशः, श्लो.२१-२५

[10]सिद्धान्तशिरोमणिः, गोलाध्यायः, भुवनकोशः, श्लो.२६-२९

लंकादेशाद्धिमगिरिरुदग्घेमकूटोऽथ तस्मा-
त्तस्माच्चान्यो निषध इति ते सिन्धुपर्यन्तदैर्घ्याः ।
एवं सिद्धादुदगपि पुराच्छृङ्गवच्छुक्ल नीला,
वर्षाण्येषां जगुरिह बुधा अन्तरे द्रोणिदेशान् ।।
भारतवर्षमिदं ह्युदगस्मात् किन्नरवर्षमतो हरिवर्षम् ।
सिद्धपुराच्च तथा कुरु तस्माद्विद्धि हिरण्मयरम्यकवर्षे ।।
माल्यवांश्च यमकोटिपत्तनाद् रोमकाच्च किल गंधमादनः।
नीलशैलनिषधावधी च तावन्तरालमनयोरिलावृतम् ।।इति[11]

भास्कराचार्यस्य मतानुसारं मेरुसंस्थानम्-

इलावृत्तस्य मध्यभागे कर्णाभूषण इव सुवर्णमयः मेरुपर्वतः स्थितोऽस्ति । अस्य मेरोः त्रिषु शिखरेषु विष्णु-ब्रह्मा-महेश्वरादिदेवानामवस्थितिः कथिता । मेरुपर्वतस्य पूर्वभागे मन्दर,दक्षिणभागे सुगंधपर्वतः, पश्चिमे विपुलपर्वतः, उत्तरे सुपार्श्वपर्वतश्चेते आधारशिलारूपेण विद्यमानाः सन्ति । ऐताषु आधारशिलाषु क्रमशः कदम्ब-जम्बु-वट-पिप्पलादयः वृक्षाः सुशोभन्ते[12] ।

विशालजम्बूवृक्षस्य फलेभ्यः द्रवितरसेन एका विशाला नदी प्रवहति । अनेन नद्याः रसपूर्णजलयुक्ता इलावृत्तस्य मृत्तिका सुवर्णमयी जायाते । अतएव सुवर्णं जम्बूनदमुच्यते । तत्र देवगणाः जाम्बुरसं पीत्वा स्वकीयं शरीरं सुवर्णमयं कुर्वन्ति[13] । मेरोः चतुर्षु आधारपर्वतेषु पूर्वदिशि चैत्ररथवनम्, दक्षिणे नन्दनंदनवनम्, पश्चिमे धृतिवनम्, उत्तरे वैभ्राजवनञ्च स्थितं वर्तते ।

उक्तवनेषु क्रमेण अरुण-मानस-महाह्रद-श्वेतजलादयः सरोवराः विद्यन्ते । एतेषु सरोवरे षु देवगणाः विहरन्ति । मेरोः त्रिषु शिखरे षु प्रथम शिखरे भागावतः विष्णोः वैकुण्ठनगरम्, द्वितीयशिखरे ब्रह्मणः शातकुम्भनगरम्, तृतीयशिखरे भागवतः शंकरस्य नगरम् सुशोभते । एतेषां नगराणामधोभागे मेरुं परितः पूर्वाद्यष्टासु दिक्षु अष्टनगराणि सन्ति । पूर्वदिशि इन्द्रस्य अमरावती, अग्निकोणे तेजोवती, दक्षिणे यमस्या संयमनी, नैऋत्ये राक्षसानां

[11]सिद्धान्तशिरोमणिः, गोलाध्यायः, भुवनकोशः, श्लो.२६-२८
[12]सिद्धान्तशिरोमणिः, गोलाध्यायः, भुवनकोशः, श्लो.३१-३२
[13]सिद्धान्तशिरोमणिः, गोलाध्यायः, भुवनकोशः, श्लो.३३

कृष्णाङ्गना, पश्चिमे वरुणस्य श्रद्धावती, वायुकोणे वायोः गंधवती, उत्तरे कुबेरस्य महोदया, ईशानकोणे च भगवतः शिवस्य यशोवती स्थिता अस्ति । अधोभागे दशदिक्पालानां नगरम्, मध्यभागे च सिद्धमहात्मानां नगरञ्च वर्तते[14] ।

वैकुंठाधिपतेः भागवतः विष्णोः पादपद्माभ्यां गंगानदी भूमौ अवतरति । मेरोः दक्षिणभागात् प्रवाहिता सा नदी मानसरोवरतीर्थात् गच्छती मन्दाकिनी-न्दा-भागीरथी-अलकनन्दादिनामभिः स्मर्यते[15] ।

भारतवर्षस्य नवखंडानि- लवणसमुद्रास्योत्तरे, हिमालयपर्वताद् दक्षिणे, पूर्वे, पश्चिमे च विस्तृतभूभागस्य नावविभागाः नवखण्डानि वा विद्यन्ते । १. ऐन्द्रखण्डम्, २. ३. कशेरुखण्डम्, ४. ताम्रपर्णखण्डम्, ५. गभस्तिमत्खण्डम्, ६. कुमारिकाखण्डम्, ७. नागखण्डम्, ८. वारुणखण्डम्, ९. गांधर्वखण्डश्चेत्यादीनि नावखंडानि वर्तन्ते । एतेषु नवखण्डेषु कुमारिकाखण्डे भारतदेशस्तस्मिन् ब्रह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रादिचातुर्वर्ण्यव्यवस्था प्रचलति[16] ।

भारते सप्तपर्वताः अपि वर्तमानाः यथा- १. महेन्द्राचलपर्वतः २. शुक्तिपर्वतः ३. मलायाचलपर्वतः, ४. ऋक्षाचलपर्वतः, ५. परियात्राचलपर्वतः, ६. सह्याचलपर्वतः, ७. विंध्याचलपर्वतश्चेति[17] ।

सप्तलोकव्यवस्था- निरक्षदेशाद् दक्षिणभागे दक्षिणभूगोलार्द्धे भूलोकः, तस्माद् उत्तरभागे उत्तरगोलार्द्धे भुवः लोकः, मेरुप्रदेशे स्वर्लोकः वर्तते । नक्षत्रगोलाद् उपरि महर्लोकः, तस्मादुपरि जनो लोकः, तस्मादुपरि तपो लोकः, तस्मादुपरि सत्यलोकश्च भवति, एतत्सर्वं पुराणस्य प्रमाणमाश्रित्योक्तम् ।

भुवायुः- भूपृष्ठभागात् १२ योजनपर्यन्तं भुवायुः भवति । मेघ-विद्युतादयः अस्मिन् भुवायोरेव उत्पद्यन्ते । भास्कराचार्येण मध्यगतिवासनायां कथितं यत् –

भूमेर्बहिर्द्वादशयोजनानि भूवायुरत्राम्बुदविद्युदाद्यम् । इति

---

[14]सिद्धान्तशिरोमणिः, गोलाध्यायः, भुवनकोशः, श्लो.३४-३६

[15]तत्रैव, श्लो.३७-४०

[16]सिद्धान्तशिरोमणिः, गोलाध्यायः, भुवनकोशः, श्लो.४१

[17]सिद्धान्तशिरोमणिः, गोलाध्यायः, भुवनकोशः, श्लो.४२

भौगोलिकसिद्धान्तानां विमर्शः-

पृथिव्याः त्रिज्या-व्यास-परिध्यादीनां मानानि प्रायः सर्वेषु सिद्धान्तेषु समानानि एवोपलभ्यन्ते । किन्तु कुत्रचित् आर्यभटीयसिद्धान्तेषु अन्यसिद्धान्तापेक्षया भिन्नसंख्याः दृश्यन्ते । तत्संख्याभेदः प्रचलितयोजनानां भेदवशात् ज्ञेयः। लल्लाचार्योऽपि आर्यभाटानुयायी वर्तते अतः तस्य मानान्यपि आर्यभटोक्तवदेव सन्ति । भारतीयज्योतिषशास्त्रे पृथिवी निराधारा, ग्रहाश्च पृथिवीं परितः भ्राम्यमाणाः कथिताः । ग्रहनक्षत्राणां गतेः कारणं प्रवहनामवायुः प्रोक्तः । भास्कराचार्यस्य सिद्धान्ते "भूमौ पदार्थपतनस्य कारणं पृथिव्याः स्वकीयाकर्षणशक्तिः भवतीति" उल्लेखः मिलति । न्यूटनमहोदयेनापि पदार्थपतनवशादेव गुरुत्वाकर्षणशक्तेः प्रतिपादनं कृतं, किञ्च तेन गणितप्रक्रियया एतदपि प्रदर्शितं यत् सम्पूर्ण ग्रहमाला गुरुत्वाकर्षणशक्तिवशादेव सूर्यं पारितः भ्रमति । तथ्यमिदं भारतीयज्योतिषस्य ग्रन्थेषु न प्राप्यते । पार्थिवध्रुवप्रदेशे मेरोः स्थानं कल्पितम् । तत्रैव विष्णु-ब्रह्मा-महेश्वरादिदेवानां लोका अपि कल्पिताः । सप्तसमुद्र-सप्तद्वीपादीनां विषये लिखितमस्ति यत् सर्वं वर्णनं पुरानाश्रितं वार्तते । अग्रे जम्बुद्वीपस्य नवखण्डानां भारतवर्षस्य नवखण्डानां वर्णनं मिलति । १२ योजनपर्यन्तं भुवायोरस्तित्वमुक्तम् । आधुनिकमतानुसारेण १२ योजनेषु ६० मील भवन्ति । आधुनिकशोधानुसारेण ४५-१०० मीलपर्यन्तं वायुमण्डलं भवति, अतः ज्योतिषशास्त्रे कृतं भुवायोर्वर्णनं वैज्ञानिकं वर्तते । प्रायः सर्वेषु सिद्धान्तेषु भौगोलिकसिद्धान्ताः समानरूपेणैव वर्णिताः सन्तीति ।

पत्राचार हेतु पता-

35/128, RAJAT PATH, MANSAROVAR, JAIPUR (RAJASTHAN) 302020

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 30-33

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वेदों में राजा और सैन्य व्यवस्था

डॉ. अश्वनी कुमार

सहायक आचार्य (अतिथि संकाय), हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, क्षेत्रिय केन्द्र, धर्मशाला।

किसी भी देश अथवा राष्ट्र का मुखिया राजा होता है और उसकी सुरक्षा तब तक नहीं हो सकती जब तक उसके पास एक सुदृढ़ सेना न हो। वेदकालीन समाज में राजा को सर्वोच्च अधिकारी तथा कर्णधार माना गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित देवासुर संग्राम में जब देवताओं की पराजय हुई तो उन्होंने विचार करके निष्कर्ष निकाला कि राजा के अभाव में उनकी दुर्दशा हुई। अतः उन्होंने राजा की नियुक्ति की। राष्ट्रोपयोगी होने के कारण राजा का चयन किया जाने लगा। राजा वंशानुगत भी बनता था। लोगों द्वारा राजा का चयन साक्षात् रूप से न करके समाज के प्रमुख व्यक्तियों की समिति द्वारा किया जाता था। अथर्ववेद के एक मन्त्र में वर्णन मिलता है कि राजा का चयन भद्र, सूत तथा ग्रामीण किया करते थे। इसके बाद जब किसी को राजा बना दिया जाता था तो उसके लिए प्रार्थना की जाती थी कि वह तेजस्वी, प्रजापालक, समस्त प्रजाओं का प्रिय तथा प्रजा द्वारा स्वीकार्य हो। समस्त प्रजा तथा अधिकारियों का उसे पूर्ण सहयोग प्राप्त हो।

ऋग्वेद में राजा के लिए कामना की गई है कि वह पृथ्वी पर उसी प्रकार निवास करे जिस प्रकार स्वर्ग में इन्द्र करते हैं। वैदिककाल में वही व्यक्ति राजा बनने के योग्य माना जाता था जो सत्य का पालन करने वाला नियमानुसार चलने वाला तथा क्षत्रिय हो। राजा को राष्ट्र का रक्षक तथा कर्णधार माना गया है। राजपद की गरिमा को बनाए रखने के लिए राजा का श्रेष्ठगुण सम्पन्न होना अत्यावश्यक है, क्योंकि राजा क्षत्रिय बल से युक्त तथा आजीवन स्थायी होता है। जिस प्रकार नदी के प्रवाह को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, उसी प्रकार राजा हमारे जीवन प्रवाहों को देखता रहता है।

वेदों में उल्लेख मिलता है कि राजा शक्तिशाली, अन्नसम्पन्न तथा धन–धान्य का संग्रहकर्ता, दिव्यजनों द्वारा सेवित, शीघ्रगामी, रथ से सम्पन्न, संकटों को दबाने वाला, शत्रु को जीतने वाला, प्रजा का उत्तम रक्षक और उनका कल्याण करने वाला, शूरवीर, निर्भीक तथा शक्तिशाली होना चाहिए। उसके पास कभी भी धन का अभाव न हो।

वेदाकालीन समाज में लोगों की राजा के सम्बन्ध में सुदृढ़ धारणा थी कि राजा अग्नि के समान शत्रु को दग्ध करने वाला, सूर्य के सदृश गुणों वाला, सौम्य तथा धर्माचरण युक्त हो।

राजा अपने राष्ट्र की रक्षा एक सुदृढ़ सेना की सहायता से ही कर सकता है। ऋग्वेद में सेना को धन बताया गया है। यजुर्वेद में सेना के महत्त्व को दर्शाने के लिए सैनिकों के प्रति सम्मान एवं सत्कार के लिए उन्हें नम्न किया है। राष्ट्र की रक्षा के लिए तथा युद्ध के लिए वीरों को एकत्रित कर सेना का गठन किया जाता था।

सेना में वीरों का क्रम निश्चित होता था। सेना को संचालन हेतु भिन्न–भिन्न विभागों में विभक्त किया जाता था। प्रत्येक विभाग का एक नेता होता था जो अपनी दक्षता के आधार पर सेना का संचालन करता था।

सेना के संगठन एवं सैनिकों को युद्ध प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए राजा एक सेनापति की नियुक्ति भी करता था। सेनापति के पद पर ऐसा व्यक्ति नियुक्त किया जाता था जो शत्रु को नियन्त्रित कर सके, सैनिकों की रक्षा कर सके, अस्त्र–शस्त्र चलाने में निपुण, सज्जनों का प्रिय, सेना को प्रसन्न रखने वाला, शत्रुसंहारक तथा शत्रु से स्वयं की रक्षा करने वाला हो। यजुर्वेद में सेनापति के गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह रूद्र की भांति शत्रु को रुलाने वाला, श्रेष्ठों के लिए प्राणवत् प्रिय, विविध प्रकार के शुभ गुण कर्म स्वभाव वाला, नीलमणि से युक्त गर्दन वाला, शत्रु के विरुद्ध प्रस्थान करने पर अंगरक्षकों द्वारा रक्षित तथा जल की भांति हमेशा अग्रसरित सेना के द्वारा अनुगम्यमान एवं संरक्षित हो। सेना के महत्त्वपूर्ण पद के कारण वेदों में उसे राजा के रत्नों में सर्वोच्च रत्न का स्थान प्राप्त था।

ऋग्वेद में सेना के लिए "त्रयनीकः" अर्थात् तीन सेनाओं वाला शब्द आता है, जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय तीन प्रकार की सेना रही होगी। एक अन्य स्थान पर भी उल्लेख मिलता है कि विजय प्राप्ति के लिए इन्द्र ने दुन्दुभि की ध्वनि से घोर नाद करती हुई पताकायुक्त अश्वरोही, पदाति और रथी सेना के साथ युद्ध किया था परन्तु इनके स्वरूप के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। सेना के प्रकारों का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं मिलता।

ऋग्वेद में कुछ स्थलों पर रथ में जोड़ने के लिए अश्वों के उपयोग का वर्णन है। वीर पुरुष अश्व का प्रयोग ग्राम पर विजय प्राप्त करने के लिए तथा वेगपूर्वक शत्रु पर आक्रमण करने के लिए करते थे। यजुर्वेद में अश्व तथा अश्वपति दोनों को ही नमन किया गया है।

वेदकालीन समाज में युद्ध के अवसर पर रथ पर आरूढ़ होकर भी युद्ध लड़ते थे। रथ में दो से लेकर चार–पाँच अश्व जुते होते थे। साधारण रथ में प्रायः दो चक्र होते थे, किन्तु अश्विन देवों का रथ अश्व रहित, परन्तु तीन पहियों वाला, तीन बन्धनों से युक्त तथा तीन भुजाओं वाला बतलाया गया है। रथ को लकड़ी से बनाया जाता था तथा गोचर्म की रस्सियों से उसे कस कर बांधा जाता था और उसे इन्द्र के वज्र के समान सुदृढ़ माना जाता था। अश्वों को नियन्त्रित करने के लिए कशा का प्रयोग किया जाता था। रथी सेना अनेक रूपों में भयंकर शब्द करती हुई आगे प्रस्थान करती थी।

वैदिक आर्य प्रायः युद्ध में पैदल सेना का ही प्रयोग करते थे। वेदों में देवताओं तथा उनके वीरों के लिए रथ प्रयोग तो पर्याप्त मात्रा में मिलता है। परन्तु शूरवीरों के लिए रथादि का प्रयोग बहुत कम मिलता है। वीरों में उत्साह के लिए उनकी वीरता के गुणों को स्मरण कराया जाता था। मरुत् वीर यह कार्य स्वयं किया करते थे। ये शूरवीर पैदल ही युद्ध किया करते थे। अश्वों तथा रथों से रहित इन्द्र से प्रेरित होकर मरुद्गण दस्युओं का वध करने के लिए पैदल ही गए थे।

वेदों में स्त्रियों द्वारा भी युद्ध करने का वर्णन प्राप्त होता है। मनुष्यों का पालन करने वाली अविच्छिन साधन सम्पन्न देव–पत्नियों से सुरक्षा के लिए कामना की गई है। इससे यह पता चलता है कि देव–पत्नियों का ऐसा संगठन था जो आवश्यकता पड़ने पर रक्षा भी करता था। ऋग्वेद के एक मन्त्र में वर्णित है कि इन्द्र के द्वारा नमुचि नामक दास का विनाश करने के अवसर पर दासों ने स्त्रियों का आयुद्ध के रूप में उपयोग किया

था। तैत्तिरीय संहिता में इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी सेना की प्रेरक देवी मानी गई है। वीरांगनाओं की वीरता के विवरण अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के सत्ताइसवें सूक्त में विस्तार से दिए गए हैं।

सेना चाहे किसी भी प्रकार की थी, परन्तु अस्त्र–शस्त्रों से युक्त होती थी। ऋग्वेद में वर्णन मिलता है कि वैदिक वीर अपने अस्त्र–शस्त्रों को चमकाते थे। शत्रु के साथ युद्ध में उसकी क्षमता के अनुसार अस्त्र–शस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। युद्ध में प्रायः सबसे अधिक प्रयोग धनुष का होता था। यजुर्वेद में एक स्थल पर वर्णन आता है कि "आ राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्" अर्थात् हमारे राष्ट्र के क्षत्रिय बाण चलाने की विद्या में निपुण शत्रु के विनाशक महारथी हों। वीर सैनिकों का मानना था कि तीव्र युद्ध में शत्रु के ऊपर धनुष से विजय पाई जा सकती है। ऋग्वेद में धनुष की संरचना का भी वर्णन मिलता है।

युद्ध में धनुष के साथ गदा का भी प्रयोग किया जाता था। परन्तु इसका उल्लेख वेदों में कम ही हुआ है, जिससे पता चलता है कि वैदिक काल में गदा का प्रयोग कम ही किया जाता था। शत्रु को भयभीत करने के लिए परशु अथवा फरसे का प्रयोग भी किया जाता था। परन्तु इसका भी वेदों में बहुत कम उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में मरुतों द्वारा युद्ध के लिए प्रस्थान करने के समय अपने रथ में भाले रखने का वर्णन प्राप्त होता है। इससे पता चलता है कि भाले का प्रयोग उस समय प्रचलन में था।

धनुष के बाद सबसे अधिक प्रयोग तलवार का होता था। मरुत् वीर उसका प्रयोग शत्रुओं तथा पशुओं को नष्ट करने के लिए करते थे। शत्रु उनकी तलवार से भयभीत हो जाते थे। वैदिक काल में तलवार का बहुत उपयोग होता था। इन्द्र भी शत्रुओं के संहार के लिए तलवार धारण करते थे। अथर्ववेद में पर्वतों पर युद्ध के लिए लाठी का उपयोग हथियार के रूप में करने का वर्णन प्राप्त होता है। जहाँ इसका प्रयोग पर्वतों पर आरोहण के लिए सहायक के रूप में होता था, वहीं अवसर पड़ने पर यह आत्मरक्षा के काम भी आती थी।

इसके अतिरिक्त भी युद्ध में कई प्रकार के दैवी अस्त्र–शस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। अपने शरीर की सुरक्षा के लिए वीर सैनिक कवच धारण करते थे जो विभिन्न प्रकार की धातुओं से बने होते थे। अथर्ववेद में वर्णन मिलता है कि प्रजाओं की सुरक्षा के लिए वायु द्वारा निर्मित कवच दिशाओं तथा उपदिशाओं में व्याप्त थे।

वेदों में सैनिकों की नियुक्ति से सम्बन्धित कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। इनमें केवल उनके गुणों से सम्बन्धित जानकारी ही मिलती है। जैसे कि सैनिक राष्ट्र के अनुकूल, भूमि विजेता, शक्तिशाली, युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले तथा शत्रु को परास्त करने वाले हों। वे उग्र स्वभाव वाले, ग्रामों तथा गौओं के विजेता, इन्द्रियों के वशकर्ता, वज्रधारी, बल से शत्रुओं का नाश करने वाले तथा अपने राजा के अनुकूल कार्य करने वाले हों। इसी प्रकार ऋग्वेद में भी कामना की गई है कि वीर, उग्र स्वभाव वाले, तेजस्वी, शारीरिक तथा मानसिक बल वाले, उत्साही, सर्वत्र विजय प्राप्त करने वाले, सत्यवेत्ता, ज्ञानी, अत्यन्त सराहनीय तथा अपने प्रचण्ड बल से राष्ट्र को सुरक्षा प्रदान करने वाले होने चाहिए। यजुर्वेद में भी कुछ इसी से मिलती–जुलती कामना की गई है।

सन्दर्भ :–

1. ऐतरेय ब्राह्मण, 1/14
2. ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये। उपस्तीन्पर्ण मह्यं त्वं सर्वान्कृण्वमितो जनान्।। अथर्ववेद, 3/5/7
3. वही, 3/4/1–3

4. ऋतावना निःषेदतुः साम्राज्याय सुक्रतु। एताव्रता क्षत्रिय क्षत्रमाशतुः।। ऋग्वेद, 8/25/8
5. राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्रवायु। वही, 7/34/11
6. अथर्ववेद, 7/86–88
7. ऋग्वेद, 5/74/7
8. नमस्ते रूद्रमन्यव ऽउतो तऽइषवे नमः बाहुभ्यामुत ते नमः। यजुर्वेद, 16/1
9. वही, 6/20, 7/37, 8/53, 27/37
10. वही, 16/17
11. आमूरजं प्रत्यावर्तयेकाः केतुमद दुन्दुभिर्वावदीति। समश्चपार्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु।। ऋग्वेद, 6/47/31
12. इन्द्रा कुत्सा वहमाना रथेनऽऽवामत्या अपि कर्णे वहन्तु। वही, 5/31/9
13. नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः। वही, 5/54/8
14. नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च। यजुर्वेद, 16/24
15. त्रिबन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक। पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मै।। ऋग्वेद, 1/118/2
16. दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भूतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः। अयामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषारथं यज।। अथर्ववेद, 6/125/3
17. ऋग्वेद, 6/75/13
18. अनस्वति वाहिनी विश्वरूपां कुरूटिनी। अथर्ववेद, 10/1/15
19. जयता तन्यतु मरुतोमति धृष्णुया यच्छुनं याथनानरः। ऋग्वेद, 1/23
20. अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून्। ऋग्वेद, 5/31/5
21. इन्द्राणी वै सेनायै देवतान्तै। तैत्तिरीय संहिता, 2/2/81
22. अथर्ववेद, 1/27/1–4
23. ऋग्वेद, 1/92/1
24. वही, 6/75/2
25. ऋग्वेद, 1/37/2
26. वही, 1/166/6
27. यो जनान् महिषाँ इवाऽतितस्थौ पवीरवान्। उता पवीरवान् युधा।। वही, 10/60/3
28. अथर्ववेद, 1/168/3
29. यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्भातरिश्वा प्रजाभ्यः। प्रदिशो यानि वयते दिशश्च तानि मे वर्याणी बहुलानि सन्तु।। वही, 19/20/2
30. इयं वीरमनु हर्षधवमुग्रमिद्रं सरवायो अनुसं रमधवम्। ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा।। वही, 6/98/3
31. हये नरो मृकता न स्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः। सत्यश्रुतः कवयो युवानो वृहद्भिरयो बृहदुक्षमाणा।। ऋग्वेद, 5/57/8

मोबाइल नंबर – 7018401044

ईमेल – ardhimanadi@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 34-42

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पौराणिकसाहित्ये साङ्गीतिकतत्त्वानामध्ययनम्

(वायुपुराणंश्रीमद्भागवतपुराणंश्रीहरिवंशपुराणंमार्कण्डेयपुराणञ्च)

कृति यादव

शोधार्थिनी, डी. ई. आई. (डीम्ड विश्वविद्याल) दयालबाग, आगरा।

अस्य संसारस्य सर्वासु भाषासु अतिप्राचीना भाषा संस्कृतभाषैव अस्ति। अस्याः भाषायाः अन्यनाम देववाणी अप्यस्ति। इमा भाषा अन्यभाषाणां तथाच कलानां जनन्यप्यस्ति। संस्कृतसाहित्ये वैदिकसाहित्यमेवञ्च पौराणिकसाहित्यंनिहितमस्ति, अतैव प्रमाणितं भवति, यत् संस्कृतभाषा अतिप्राचीना भाषाऽस्ति, तथाच सर्वासां कलानामितिहासंविवरणञ्च संस्कृतसाहित्यैव प्राप्तमस्ति, अतैव इमां भाषां सर्वासां कलानां जनन्यति वदन्ति। आसु कलासु एका सङ्गीतकलाऽप्यस्ति। सङ्गीतकला सर्वासु कलासु अत्युत्कृष्टा कलाऽस्ति। इति तु सर्वे सामान्यतया जानन्त्यैव यत् सङ्गीतं वैदिकसाहित्ये अस्ति। तत्रोऽपि सामवेदः सङ्गीतमयः अस्ति। किन्तु सङ्गीतं तु सम्पूर्णसंस्कृतसाहित्ये प्राप्तं भवति। संकृतसाहित्यैव पौराणिकसाहित्यमप्यस्ति। यत्रोऽपि साङ्गीतिकत्त्वानां विवेचनं सम्यकतया प्राप्तमस्ति।

पौराणिकसाहित्यम् -

पौराणिकसाहित्येपुराणानि सन्ति। पुराणरूपेण अष्टादशमहापुराणानि एवञ्च अष्टादशोपपुराणानि स्वीकृतानि सन्ति। पुराणानि सनातनधर्मसम्बन्धीनः आख्यानग्रन्थाः सन्ति। पुराणभारतीयसंस्कृतिकलानाञ्च मेरुदण्डः अप्यस्ति। पुराणशब्दस्य व्युत्पत्तिः अनेकप्रकारेणोक्ताऽस्ति,किन्तु वायुपुराणे पुराणशब्दस्य व्युत्त्पत्तिः (पुरा+अन्) अन्धातुतः कथिताऽस्ति। 'अन्' धातोः अर्थः श्वासस्वीकरणं जीवितः चास्ति। वायुपुराणे एकश्लोको प्राप्तोऽस्ति ।

यस्मात्पुरा हयनतीदं पुराणं तेन हि स्मृता।

निरुक्तमस्य तो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

वा.पु. १/२०३

प्राचीनकालतः इदं जीवितमस्ति तथाच चलत्यपि अतैव इदं पुराणमिति वदन्ति। यः अस्य निरुक्तं जानाति सः पापमुक्तः भवति। पुराणस्य इयं नैरुक्तिकव्याख्याऽस्ति। अमरसिहेन पुराणस्य लक्षणं अनेन प्रकारेण दत्तमस्ति।

सर्गश्च प्रतिसश्च वंशोमन्वन्तराणि च।

वंशानुचरितं चैव पुराण पञ्चलक्षणम्।।

यस्मिन् ग्रन्थे इमानि पञ्चलक्षणानि भवन्ति सः ग्रन्थः पुराणरूपेण स्वीकृतोऽस्ति।

सङ्गीतम् -

सङ्गीतकला प्रमुखपञ्चकलासु अत्युतकृष्टा कलाऽस्ति। सङ्गीतशब्दस्य अर्थोऽस्ति। यत् (सम्+गीतम्) इत्युक्ते सम्यकप्रारेण यस्य गानं भवति, तत् सङ्गीतमस्ति। अस्य अर्थस्य स्पष्टता वराहोपनिषदि प्राप्ताऽस्ति।

सङ्गीत तालत्रयवाद्यवंश मौत्रिरथकुम्मपरिक्षण धीर्नटीव।

वराहोपनिषद्

सङ्गीतस्य समृद्धपरम्परा वैदिककालतः अद्यपर्यन्तं निरन्तरतया अनेकस्वरूपाणां माध्यमेन प्रवहति। एवमऽपि उक्तमस्ति, यत् प्रकृत्यां मानवस्य लीनभावनात् कलायाः सृष्टिः भवति। सा कला सङ्गीतकला उत् अन्या काऽपि कला भवेत्।

सङ्गीतस्य मध्ये गीतवाद्यनृत्यञ्च एषां समायोजनं भवति। शारङ्गदैवेन प्रणीतसङ्गीतरत्नाकरे सङ्गीतस्य परिभाषा दताऽस्ति।

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं सङ्गीतमुच्यते।

गीतरत्नाकर १/१७

पौराणिकसाहित्ये सङ्गीतम् -

संस्कृतसाहित्ये पुराणेषु सङ्गीतस्य स्वरूपं स्पष्टतया प्राप्तमस्ति।संस्कृतसाहित्ये वैदिकसाहित्यस्यअनन्तरं पौराणिकसाहित्ये साऽगीतिकत्त्वानां विवेचनमत्युत्तमतया दत्तमस्ति। पौराणिकसाहित्ये सङ्गीतस्य सर्वे अंशाः प्राप्ताः भवन्ति।

वैदिकयुगस्यअनन्तरंपुराणी-महाकाव्य-कालेषुअपिसङ्गीतस्यप्रमाणानिप्राप्नुमः। अतः अस्मिन्साहित्येसङ्गीतस्यस्थितिंज्ञातुं पुराणानां, उपनिषदानां, शैक्षणिक पुस्तकानां

यथा सहायं स्वीकरणीयम्। अस्मिन् समये सङ्गीतस्य शास्त्रीयस्तरः निश्चितरूपेण पतितः आसीत्, किन्तु लोकगीतानां लोकनृत्यानाञ्च माध्यमेन सार्वजनिकजीवने सङ्गीतस्य प्रचारः वर्धितः आसीत्। १८

मुख्यपुराणानां महापुराणानां च वर्णनं ग्रन्थेषु प्राप्यते। सङ्गीत-इतिहासस्य दृष्ट्या येषु पुराणेषु सङ्गीतसम्बद्धा विशेषसामग्री उपलभ्यते तेषु वायुपुराणमं श्रीमद्भागवतपुराणं श्रीहरिवंशपुराणं मार्कण्डेयपुराणञ्च अन्तर्भवति।

वायुपुयाणम् -

पौराणिकसाहित्ये सर्वप्रथभवयं वायुपुराणं पश्यामः।मनीषिणांमतेन भारतस्य प्राचीनपुराणानां मध्ये वायुपुराणं अन्यतमप्राचीनम् अस्ति। अस्य पुराणस्य संकलनं ई.शती.-३ तः ई.शती-५ पर्यन्तम् अभवत् इति।

वायुपराणे ८६ एवञ्च ८७ द्वयोः अध्यायोः मध्ये सर्वाधिकसङ्गीतस्य अंशाः प्राप्ताः भवन्ति। वायुपुराणे सर्वप्रथमे स्वरमण्डलस्य विषये उल्लेखं कृत्वा ७ स्वराः, ३ ग्रामाः, २१ मूर्च्छानाः, ४९ स्वराः इत्यादिभिः समुदायाय स्वर्मण्डलसंज्ञा दत्ता इति उक्तम् अस्ति।अस्य कृते वायुपुराणे एकश्लोको प्राप्तोऽस्ति।

सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्तवेकविंशतिः।

तानाश्चैकोनपंचाशदित्येतत्स्वरमण्डलम्।।

वा.पु. ८६/३६

स्वरमण्डले सप्तस्वराः त्रय ग्रामाः एकविंशतिः मूर्च्छनाः एकोनपञ्चाशत् तानाश्च एषां सामूहिकसंज्ञा भवति। नारदीयशिक्षायामपि स्वरमण्डलस्य विषये केञ्चन भेदेन श्लोक: प्राप्तः भवति। वायुपुराणे सङ्गीतस्य जातीगन्धर्वस्य कृते अपि एकश्लोको प्राप्तोऽस्ति।

ध्यायतित्येव धातुव यात्रार्थे परिपठ्यते।

पिबतो जजिरे गास्तु गन्धर्वास्तेन तेस्मृता।।

वा. पु. ९/४०

ध्यायति इति धातुः यात्रार्थे परिपाठिता भवति। इमे पिबन्तः गायन्तः च उत्पन्नाः बभूवुः, अतैव इमान् गन्धर्वाः इति कथयन्ति। गन्धर्वाः गानविद्यायां तथाच किन्नराः नृत्यविद्यायां कुशलाः भवन्ति।

वायुपुराणे महादेवः स्वयमेव सदैव गीतवाद्यनृत्ये च तत्परः भवति स्म। अतैव महादेवस्य आराधनायां भक्तभूतगणश्च सङ्गीतस्योपहारमर्पयति स्म।

श्रीमद्भागवतपुराणम् -

श्रीमद्भागवतपुराणे स्वराणां संख्या सप्तोऽक्ताऽस्ति।

स्वराः सप्तविहारेण भवन्ति स्म प्रजाति ।

भा.पु. १३.२.४०

एषां सप्तस्वराणां व्युत्पतिः ब्रह्मातः स्वीकृताऽस्ति। रागजातीनां विभाजनं रागानां संख्यायाः आधारे कृतं भवति। श्रीमद्भागवतपुराणे गीतस्य विषयोऽक्तमस्ति। यत् युगलगीतवेणुगीतञ्च सम्बधगीतमस्ति। इदं गीतं षड्विंशतिश्लोकेषु वर्णितमस्ति। चतुर्विंशतितमे श्लोके गोपिसम्वादोऽस्ति। अनेन श्लोकेनश्रीकृष्णरूपमाधुर्यस्य चर्चाकृताऽस्ति।

तव सुतः सति यदाधरा बिम्बे दत्त वेणुरनयत् स्वरजातीः।

भा.पु.३५/१४

हवन शस्तदुपधार्यः सुरेशः शक्रशर्वपरमेष्ठि पुरेगा।

भा.पु.३५/१५

यदा सः स्वस्य बिम्बाफलसदृशरक्ताधरयोः बंशी स्थापयित्वास्वराणां नैकजातीः वादयति। तदा बंश्याः मधुरतानं श्रुत्वा ब्रह्माशङ्करिन्दश्च देवाः न ज्ञातवन्तः यत् सः श्रीकृष्णैवऽस्ति। अत्र श्रीकृष्णरूपमाधुर्यस्येवञ्च साङ्गीतिकतत्त्वानां विवरणमस्ति। इतोऽपि श्रीमद्भागवतपुराणे गीतेषु अर्थमाधुर्यशब्दमाधुर्यः तथाच रागरागिनीनां गायनयोग्यपदैः सह नृत्यपदानां नियोजनमपि उत्तमप्रकरेण प्राप्तं भवति।

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः।

योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रिय।।

भा.पु.३३/०३

अत्र रासनृत्यस्य विषये चर्चा कृताऽस्ति, यत् सम्पूर्णयोगस्य स्वामीभगवान् श्रीकृष्णः द्वयोः द्वयोः गोपिकानां मध्ये प्रकटितः बभूव तथाच तासां ग्रीवायां हस्थं स्थापयित्वा सर्वाभिः सह महारासोत्सवे भूत्वा रासनृत्यं करोति स्म।

श्रीहरिवंशपुराणम् -

तस्मिन् काले अपि वैदिकलौकिकप्रवाहयोः सङ्गीतस्य प्रवाहः प्रचलितः आसीत्। पूर्वंतु प्रचलितस्य वैदिकसङ्गीतस्य यज्ञेषु सामगानंभवति स्म। सामगायनस्य अतिरिक्तं यज्ञदीयां गाथादीनां गायनम् अपि अस्ति।वैदिकस्य श्रीहरिवंशपुराणेवैदिकस्यअपेक्षया छालिक्यगान्धर्वस्योल्लेखः प्राप्तोऽस्ति। अस्य गान्धर्वस्य अविष्कर्ता भगवान् श्रीकृष्णः बभूव तथाच इयं प्रणाली तस्मिन् काले गोपगायकेषु लोकप्रिया भवति स्म। श्रीहरिवंशपुराणे सामूहिकसङ्गीतायोजने छालिक्यगानस्य चारुचित्रणमेकस्मिन् श्लोके प्राप्तमस्ति।

आज्ञापयामसततः स तस्य निशी प्रहोष्टो भगवानुपेन्द्रः।

छालिक्यगेयं बहुसन्निधान यदेव गान्धर्वमुदाहरन्ति।।

ह.पु.८९/६०

तस्यां रात्रौ प्रसन्नः भूत्वा श्रीकृष्णः छालिक्यगेयमारब्धवान् तथाच छालिक्यगान्धर्वं श्रीकृष्णः स्वर्गलोकतः प्राप्यानीय भूलोके स्थापितवान्। सः एव तत् गेयं प्राद्युम्नं पाठितवान्। हरिवंशपुराणे न तु सङ्गीतगायनस्येव अंशाः न प्राप्ताः सन्ति। तत्र तु वादनं नृत्यञ्चाऽप्यस्ति। हरिवंशपुराणे नान्दीवाद्यस्योल्लेखो प्राप्तोऽस्ति।

नान्दिं च वादयाभास प्राद्युम्नो गद एवं च।

ह.पु. २०/२५

यत्र हल्लीसकक्रीडायाः वर्णनं भवति। तत्र हल्लीसकक्रीडनं भवति। इदं रासनृत्यस्य प्रारम्भिकरूपं बभूव। अस्य कृते अपि एकश्लोको प्राप्तोऽस्ति।

तास्तु पंक्तिकृताः सर्वा रमयन्ति मनोरम।

गायन्त्यः कृष्णचरितं द्वन्द्वशो गोपकन्यकाः।।

ह.पु. २०/२५

मार्कण्डेयपुराणम् -

मार्कण्डेयपुराणे सङ्गीतस्य सामगान्धर्वश्च द्वयोः प्रणाल्योः सम्बन्धी महत्वपूर्णसामग्री प्राप्ता भवति। एकश्लोकोऽपि प्राप्तोऽस्ति। यत्र सामगानस्य विषये चर्चा कृताऽस्ति।

मध्यन्दिनेऽपराहने च समं चैवभिचारिकम्।

अपराहने पितृणां तु साम्ना कार्याणि तनि वै।।

आभिचारिककार्य मध्याह्नापराहनेचसम्पन्नं भवितुं शक्नोति। किन्तु पितृसम्बन्धीकर्यस्यायोजन सामगानेन सह अपराहनैव सम्पन्नं भवति।

गान्धर्वस्य शास्त्रीयविवरणं मार्कण्डेयपुराणे उपलब्धमस्ति। गान्धर्वस्यान्तर्गते त्रयग्रामाः मूर्च्छनादीनामन्तर्भावः निर्दिष्टोऽस्ति। अस्य स्पष्टतास्मिन् श्लोके भवति।

षडजमध्यम गान्धारग्राम जय विशारदा।

मूर्च्छनाभिश्च तानैश्च सः प्रयोगः सुखप्रदम्।।

मा.पु. ९०६/५८

इदं दृष्ट्वा वयं वक्तुं शक्नुमः। यत् मार्कण्डेयपुराणे सङ्गीतस्य अशाः उत्तमतया दत्ताः सन्ति। अध्येयग्रन्थानेवञ्च अन्यग्रन्थानऽपि पठित्वा स्पष्टतया वक्तुं शक्नुमः, यत्पौराणिकवाङ्मये साङ्गीतिकतत्त्वानां विवरणं सम्यकतया प्राप्तं भवति।

उद्देश्यम् -

यद्यपि संस्कृतवाङ्मये ये अस्माकं प्राचीन वेदपुराणोपनिषदित्यादयः सन्ति, तथापि तान् वर्तमानसमये नैकाः जनाः पठितुं न शक्नुवन्ति, अतैव अनेन पठनेन विना अपि यत्ज्ञानं एषु निहितमस्ति, तत् सर्वे ज्ञातुमेवञ्च पठितुं शक्नुयुः। इत्येव विचिन्त्य अहं स्वस्य शोधप्रत्रस्य विषयं निर्धारितवती, तथाच सरलभाषया संस्कृतस्य महत्वं लिखित्वा दर्शितुमिच्छामि।एवञ्च अत्यन्तप्राचीनकालस्य ग्रन्थेषु या सङ्गीतकला, विद्यमानाऽस्ति। येषां जनानां रुचि संस्कृते नास्ति तेषां जनानां रुचिमुत्पादयितुं सा सङ्गीतकला अस्मीन् शोधपत्रे साहिका भवेत्यति मम प्रयासः अस्ति।

सन्दर्भग्रन्थसूची -

क्र.सं.	मूलग्रन्थः	लेखकः /सम्पादकः	प्रकाशनम्	वर्षम्/ संस्करणम्
१.	वायुपुराणम्	पं. श्रीराम आचार्य	संस्कृति संस्थान, बरेली	
२.	श्रीमद्भागवतपुराणम्		गीता प्रेस, गोरखपुर	
३.	श्रीहरिवंशपुराणम्		गीता प्रेस, गोरखपुर	
४.	मार्कण्डेयपुराणम्		गीता प्रेस, गोरखपुर	

क्र. सं.	सहायकग्रन्थः	लेखकः/सम्पादकः	प्रकाशनम्	वर्षम्/संस्करणम्
१.	सङ्गीतरत्नाकरः	मङ्गेश रामकृष्ण आन्दाश्रममुद्रालय तेलङ्ग/हरिनारायण आप्टे	आनन्दाश्रममुद्रालय	
२.	भारतीयसङ्गीतग्रन्थ	डॉ. लावण्य कीर्ति सिंह	कनिष्क पब्लिशर्स नई दिल्ली	
३.	भारतीयसङ्गीत काइतिहास	डॉ. ठाकुर जयदेवसिंह	वाराणसी	प्र.सं.-१९१४ई.
४.	संस्कृत वाङ्मयकाइतिहास	डॉक्टर जगन्नारायण पाण्डेय	आयुर्वेद संस्कृत हिंदी जयपुर	१९१४
५.	संस्कृतसाहित्येतिहासः	आचार्यहंसराज अग्रवाल	चौखम्बा सुरभारतीप्र.वा.	१९८६
६.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ. रामसागर त्रिपाठी	चौखम्बा संस्कृत प्रति.दिल्ली	१९९१
७.	संस्कृत शास्त्रों का इतिहास	डॉ .बलदेव उपाध्याय	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	१९९४
८.	भारतीय सङ्गीत शास्त्र की पृष्ठभूमि	डॉक्टर क्यूटी बाढला	कनिष्क पब्लिशर्स नई दिल्ली	२०१५
९.	नाट्यशास्त्रम्	डॉ. एच. एन. यादव	हरीश प्रकाश मंदिर	नवीन संस्करण
१०.	पाणिनीयशिक्षा	डॉ. एच.एन.यादव	हरीश प्रकाश मंदिर	
११	नारदीये शिक्षा (शिक्षाविवरणोपेता)टीकासंहिता	भट्टशोभाकर	श्रीपीतांबरापीठसंस्कृत-परिषद दतिया (मध्य प्रदेश)	
१२.	संस्कृत वांग्मय का बृहद इतिहास	आचार्य बलदेवसिंह उपाध्याय	उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान	

१३.	संस्कृत साहित्य का परिचय	डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी	प्रतिभा प्रकाशन	१९९८
१४.	नारदपुराणम्		गीता प्रेस, गोरखपुर	
१५.	पुराण विमर्श	आचार्य बलदेव उपाध्याय	आयुर्वेद संस्कृत हिंदी, जयपुर	१९९५
१६.	पुराण समीक्षा	डॉ. हरी नारायण दुबे	इंटरनेशनल इंस्टिट्यूट इला	१९८५
१७.	वैदिकसाहित्यसंस्कृतिश्च	डॉ. बलदेव उपाध्याय	शारदा मंदिर प्रकाशन काशी	१९५८
१८.	वैदिकसाहित्यसंस्कृतिश्च	वाचस्पतिगैरोला आचार्य कृष्णदत्त वाजपेयी	सवंर्तिका प्रकाशन इलाहाबाद	१९७०
१९.	छान्दोग्योपनिषद्	डॉ. मनु देवबंधु	भारतीयविद्या प्रकाशन वाराणसी	१९९८
२०.	देवीभागवत पुराण		गीता प्रेस, गोरखपुर	

क्र.सं.	**कोषग्रन्थः**	**लेखकः/सम्पादकः**	**प्रकाशनम्**	**वर्षम्/संस्करणम्**
१.	संस्कृतशब्दार्थकौस्तुभ	पं. तारिणी सा	रामनारायण प्रयाग	१९५७
२.	संस्कृत हिंदी कोश	वामन शिवराम आप्टे	मोतीलालबनारसीदासदिल्ली	१९६६
३.	पारिजात-कोशः	पं. ईश्वरचन्द्रः	परिमल पब्लिकेशन दिल्ली	२००४
४.	शब्दकल्पद्रुमः	राजाराधाकान्तादेवा	चौखम्बा संस्कृत सीरीज. ऑफि.	तृतीय सं.
५.	बरकोस	सृजनझा	राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थानम्, मुम्बई	

क्र. सं.	पत्रपत्रिकाश्च	लेखकः/ सम्पादकः	प्रकाशनम्	वर्षम्/ संस्करणम्
१.	सङ्गीतपत्रिका		सङ्गीतकार्यालय हाथरस	१९८२
२.	संस्कृतशोधगङ्गा		लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत संस्थान	
३.	संस्कृतमञ्जरी		दिल्ली संस्कृत अकादमी दिल्ली	

पता- 180- बरौली अहीर शमशाबाद रोड आगरा उत्तर प्रदेश- 283125

मेल आईडी-kratiyadav987@gmail.com

फोन.नं.-7017220427

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 43-48

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वेदकालीन संस्कृत एवं संस्कृति

डॉ. आदित्य प्रकाश

सहायक प्राचार्य, (व्याकरण विभाग), प्रताप नारायण संस्कृत महाविद्यालय, बोसी बांका,
जिला–बांका, पिन नं0–813104

वैदिक शब्द संस्कृत के वेद से बना है जिसका अर्थ ज्ञान होता है। वैदिक संस्कृत 2000 ईसा पूर्व से लेकर 600 ईसा पूर्व तक बोली जाने वाली एक हिन्द–आर्य भाषा थी, यह संस्कृत की पूर्वज भाषा थी और आदिम हिन्द–ईरानी भाषा की बहुत ही निकटतम संतान थी, वैदिक संस्कृत और अवस्ताई भाषा एक दूसरे के बहुत निकट है। वैदिक संस्कृत को वैदिकी या छन्दश आदि कहे जाते हैं। वैदिक साहित्य को तीन भागों में बाँटा गया है:–

(1) संहिता (2) ब्राह्मण ग्रंथ (3) उपनिषद, वैदिक साहित्य का सृजन वैदिक संस्कृत में किया गया है।

वैदिक संस्कृत की विशेषताएँ :–

वैदिक संस्कृत श्रिष्ट योगात्मक है। वैदिक संस्कृत में संगीतात्मक एवं बालात्मक दोनों ही स्वराघात मौजूद है। वैदिक संस्कृत में आठ विभक्तियों (कर्त्ता, सम्बोधन, कर्म, कारण, सम्प्रदान, उपादान, सम्बन्ध, अधिकरण) का प्रयोग मिलता है, वैदिक संस्कृत में धातुओं के रूप आत्मने एवं परस्मै दो पदों में चलते थे।

वैदिक संस्कृत ध्वनियाँ :–

डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी, डॉ0 उदय नारायण तिवारी ने वैदिक ध्वनियों की संख्या–52 मानी है जिसमें 13 स्वर तथा 39 व्यंजन है। कुछ विद्वान वैदिक स्वर की संख्या 14 मानी है। वैदिक ध्वनि का वर्गीकरण निम्नलिखित तरीकों से किया जा सकता है:–

वैदिक स्वर की संख्या–13

मूल स्वर – अ, आ, इ, ई उ, ऊ, ऋ, ॠ लृ

संयुक्त स्वर – ए, ओ, ऐ, औ

वैदिक व्यंजन की संख्या–39 है।

	अघोष		घोष		अघोष		अर्धस्वर
स्थान	अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण	उष्ण / महाप्राण	अन्तस्थ
कण्ठ	क	ख	ग	घ	ड.		
तालव्य	च	छ	ज	झ	ञ	श	य
मूर्धन्य	ट	ठ	ड	ढ़	ण	ष	र
दन्त्य	त	थ	द	ध	न	स	ल
ओष्ठ	प	फ	ब	भ	म	(:) विसर्ग	
				ह	(.)	जिहवामूलीय	
					अनुस्वार	उपहमानीय	

डॉ0 भोलानाथ तिवारी के अनुसार–वैदिक संस्कृत में केवल तत्पुरूष, कर्मधारय, बहुब्रीहि एवं इन्द्र ये चार ही समास मिलते हैं।

वैदिक संस्कृत में काल एवं भाव मिलाकर क्रिया 10 प्रकार के रूपों का प्रयोग मिलता है।

चार–काल (1) लोट् (आज्ञा) (2) लिट् (परोक्ष या सम्पन्न) (3) लड्. (अनद्यतन) (4) लुड्. समान्य भूत)।

छहभावः–(1) लोट, (आज्ञा) (2) विधिलिड्. (सम्भावनार्थ) (3) आर्शीलिड. (इच्छार्थ), (4) लुड. (हेतु हेतु समुभ्दाव या निर्देश (5) लेट (अभिप्राय) और लेड्. (निर्वन्ध)।

क्रिया 10 काल और भाव भेद को ही लकार कहते है।

वैदिक संस्कृत में विकरण की भिन्नता के अनुसार धातुओं को 10 गणों में विभक्त किया गया था जो इस प्रकार है :–

भ्वादिगण, अदार्दिगण, ह्यादिगण (जुहोत्यादि) दिवादिगण, स्वादिगण, तुदादिगण, तनादिगण, रूधादिगण, क्रियादिगण, चुरादिगण।

वैदिक संस्कृत के दौरान की रचनाएँ पूर्णतः धार्मिक हैं।

वैदिक संस्कृत में पर्याप्त शब्दों का उपयोग किया गया है। जैसे–देवासः जनामः।

वैदिक संस्कृत में स्वरों की संख्या अधिक है।

वैदिक संस्कृत में उपसर्ग धातुओं से पृथक है। इनका स्वतंत्र प्रयोग किया जा सकता था।

वैदिक संस्कृत में कुछ स्थानों में सप्तमी एकवचन विलुप्त हो जाता है।

व्याकरण की दृष्टि से वैदिक संस्कृत में कुछ अवस्था देखने को मिलती है।

लेट् लकार की उपलब्धता होती है।

शब्दों के अर्थ में अन्तरः पत्–उड़ना, सह–जीतना, असुर–शक्तिशाली, अराति–कृपण, वध–घातक शस्त्र श्रिति–गृह।

भाषा स्वरो का उपयोग किया जाता था।

संगीतात्मक शब्दो का प्रयोग देखने को मिलता है।

वैदिक व्याकरण के लिए लेट् लकार का प्रयोग वेद सम्बन्धी साहित्यों में किया जाता है।

वैदिक संस्कृति :-

वैदिक काल प्राचीन भारतीय संस्कृति का एक काल खण्ड है जिसके दौरान वैदिक सम्यता आर्यों द्वारा स्थापित एक ग्रामीण सभ्यता थी। जिससे किसी देश के सर्वसाधारण का व्यक्तित्व निष्पन्न होता है। इस निष्पन्न व्यक्ति के द्वारा लोगों को जीवन जगत के प्रति एक अभिनव दृष्टिकोण मिलता है। कवि इस अभिनव दृष्टिकोण के साथ अपनी नैसर्गिक प्रतिभा का समांजस्य करके सांस्कृतिक मान्यताओं का मूल्यांकन करते हुए उनकी उपादेयता प्रतिपादित करता है। वह प्रकृति के सत्पक्ष का समर्थन करते हुए उसे सवजन ग्राहय बनाता है।

हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है। संस्कृति शब्द सम्+कृति है। इस शब्द का मूल 'कृ' धातु में है। वैयाकरण 'संस्कृति' शब्द का उद्‌गम सम्+कृ से भूषण अर्थ में सुट् आगम पूर्वक क्तिन प्रत्यय से सिद्ध करते हैं। इस दृष्टिकोण से संस्कृति का शाब्दिक अर्थ समप्रकार अथवा भली प्रकार किया जाने वाला व्यवहार अथवा क्रिया है। जो परिष्कृत अथवा परिमार्जित करने के भाव का सूचक है। संस्कृति शब्द को संस्कार से भी जोड़ा जाता है। वेद को श्रुति कहा जाता है। श्रुति का अर्थ सुनना है। सुनकर गुरू परम्परा से अधीन होने के कारण मंत्र ही श्रुति है। इन्हीं को मंत्र भी कहते हैं। मंत्रो का समुच्चय ही सूक्त हैं तथा सूक्तों का समुच्चय संहिता है।

संहिता चार :-

(1) ऋग्वेद संहिता (2) यजुर्वेद संहिता (3) सामवेद संहिता (4) अथर्ववेद संहिता इन सभी संहिता का संकलन यज्ञों की आवश्यकता के अनुरूप वेदव्यास मुनि कृष्ण द्वौपायन ने किया था/ब्राह्मण, अरण्यक, उपनिषद् भी अलग अलग किसी न किसी वेद से अवश्य जुड़ा हुआ है, सभी वेद के अपने–अपने ब्राह्मण, अरण्यक और उपनिषद है। वेद भारतीय विश्वास के अनुसार ब्रह्मा के विश्वास से उत्पन्न एवं ऋषियों द्वारा दृष्ट है। वेद के प्रमाण एवं सत्ता को सभी स्वीकार करते है।

ऋग्वेद :-

ऋग्वेद चारों वेदों में प्राचीनतम् है। ऋग्वेद में प्राचीनतम भारतीय आदर्श, मर्यादा एवं ज्ञान तथा माननवता का सम्पूर्ण चित्रण प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन ऋषि मनिषियों के कारण इस संहिता को संक्षेप में ऋग्वेद के नाम से भी जाना गया है। इस ग्रंथ में 10 मण्डल कुल मिलाकर 10600 ऋचाएँ है। कि 1028 सूक्तों में विभक्त है। महाभाष्य जैसे प्राचीन ग्रंथ (1500 ईसा पूर्व) में इक्कीस शाखाओं का निर्देश है, लेकिन परवर्ती साहित्य में केवल पाँ शाखाओं का विवरण ही मिलता है। ऋक् प्रातिशाख्य के अनुसार शाकल शाखा ही मुख्य और आदि शाखा है। वास्कल शाखा के अनुसार ऋग्वेद का अष्टकों, अध्यायों और वर्गों में विभाजन किया गया है।

ऋग्वेद की भाषा :-

शास्त्रीय अध्ययन भी सिद्ध कर दिया है कि इसके सूक्तो की भाषा प्राचीनतम है। भारतीय साहित्य में ऋग्वेद से पूर्व की अन्य कोई रचना नहीं है। सभी भारतीय साहित्य एवं भारतीय जीवन ऋग्वेद को प्राचीनतम स्वीकार करता हवै। ऋग्वेद की भाषा एवं विषय के गम्भीर विवेचना के पश्चात् विद्वानों ने यह मान्यता स्थापित की है कि ऋग्वेद के दूसरे से सॉतवे मण्डल तक के सूक्त अपेक्षा कृत प्राचीन है। पश्चात्य विद्वान इन मण्डलो का कुल मण्डलों के नाम से जाने जाते हैं। दूसरे मण्डल के सातवें मण्डल तक प्रत्येक मण्डल का सम्बन्ध केवल एक ऋषि या उसके वंश से है। क्रमशः उन ऋषियों के नाम हैं :– गृत्समद् विश्वासमित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज

और वशिष्ठ, अष्टम् मण्डल का संबंध प्रधान कण्वऋषि से के वंश से है। नवम् मण्डल के ऋषि कुल मण्डल के ऋषियों में से ही हैंः–अयऋषयः शतर्चिनो माध्यमा गृत्समदो विश्वामित्रों वाम देवोड त्रिभरद्वाजो वसिष्ठः प्रगाथाः पावमान्यः क्षुद्रसूक्ता महासूक्त इति प्राच्य विद्वानों के अनुसार ये ऋषि मंत्रों के दृष्टा है। रचयिता नहीं अथत् उन्होंने योग एवं तपोबल इन मंत्रों का प्रथम वार दर्शन किया था। प्रथम, नवम् एवं दशम् मण्डल के सूक्तों के रचयिताओं के नाम दिये हुए है। जिसमें उनके महिलाएँ भी है। इनमें लोपामुद्रा, धोषा, शची, पौलोमी आदि प्रमुख है।

वैदिक देवताओं का विश्लेषण करते हुए निरूक्तकार क्रमशः उन्हें पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्युलोक से संबंध रखने के कारण तीन प्रकार के मानते है। अग्नि, सोम, पृथ्वी आदि देव पृथ्वी स्थानीय कहलाते है :– इन्द्र, रूद्र, वायु आदि देव अन्तरिक्ष स्थानीय और वरूण, मित्र, उषस, सूर्य आदि देव द्युस्थानीय उपर्युक्त देवों को भी चार रूपों में माना गया है।

(1) प्राकृतिक शक्ति रूप देवता इन्द्र, सूर्य सविता, पूषा आदि।

(2) गृह देवता अग्नि, सोम आदि।

(3) कल्पना अथवा भावजन्य मन्यु श्रद्वा आदि।

(4) गौण देवता–गन्धर्व अप्सरा आदि।

ऋग्वेद के देवता प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के प्रतीक हैं। ऋग्वेद में उनके देवताओं का वर्णन हैं, जिसमें द्यौ, वरूण, सूर्य, सविता, पूषन, विष्णु अशिवर्नो, पर्जन्य, इन्द्र, अग्नि, उषा, सोम, आदि प्रमुख है। ऋग्वेद में सर्वाधिक स्तुति इन्द्र की ही की गई है। इसके लिए लगभग 200 सूक्तों की रचना हुई है।

ऋग्वेद में सर्वव्यावी ब्रहय सत्ता निरूपण है। ऋग्वेद में आत्मा के संबंध में प्राचीनतम मान्यता इस रूप में मिलती है :–

द्वा सुपर्णा ससुजा सखाया समान वृक्षं परिष स्वजाते।
त्योरन्यः पिरपलं स्वाद्वन्यनश्ननन्योर्डाय चाकसीति ।।

अर्थात् दो पक्षी संयुक्त रूप से मित्रवत एक वृक्ष की शाखा पर बैठे हैं। उनमें से एक मधुर फल खाता है और दूसरा न खाते हुए केवल देखता रहता है। अथर्ववेद के मंत्र यही धारणा व्यक्ति की गई है। इसमें खाने वाला पक्षी आत्मा और दृष्टा पक्षी परमात्मा है।

यजुर्वेद :–

यजुर्वेद यज्ञों में होने वाले मन्त्रों का संग्रह है। इन मन्त्रों का यजुष् कहते हैं। ये मन्त्र अधिकांश गद्यात्मक है। कहीं कहीं पद्यात्मक भी है। ऋक तथा साम से भिन्न गद्यात्मक मन्त्रों का अभिधान यजु है। 'गद्यात्मको यजुः'' महाभाष्य की भूमिका में पतंजली ने यजुर्वेद की एक सौ एक शाखाओं का उल्लेख किया हैः– एकशतमध्वर्युशाखा। कहने का आशम यही है कि इस वेद की उनेक शाखाओं का उल्लेख यत्र तत्र मिलता है।

यजुर्वेद के मुख्य दो भेद हैं :–

कृष्ण यजुर्वेद एवं शुल्क यजुर्वेद।

शुक्ल यजुर्वेद :–

यजुर्वेद की यह महत्वपूर्ण संहिता है। इस संहिता में कुल चालीस अध्याय हैं। इस अध्यायों में उनेक

प्रकार के वृहदाकार यज्ञों से सम्बद्ध ऋषियों कि प्रार्थनाओं का संकलन है। प्रथम एवं द्वितीय अध्याय में चन्द्र दर्शन एवं पोर्णमासी आदि के लिए मन्त्र संकलित है। तृतीय अध्ययाय में दैनिक अग्निहोत्र तथा चातुर्मास्य यज्ञ के मन्त्रों का संग्रह है। इन संहिता के अंतिम अध्यायों का परवर्ती सिद्ध करने का एक पुष्ट प्रमाण है।

कृष्ण यजुर्वेद :–

कृष्ण यजुर्वेद की विषय वस्तु लगभग शुक्ल यजुर्वेद से मिलती जुलती है। इसलिए शुक्ल यजुर्वेद के विवेचन से कृष्ण यजुर्वेदीय विषय–सामग्री का आभास मिल जाता है, क्योंकि दोनों में वर्णित अनुष्ठान की विधियाँ भी लगभग समान ही हैं। चरण व्यूह आदि ग्रन्थों में कृष्ण यजुर्वेद की 85 शाखाओं का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद संहिता अध्वर्यु पुरोहितों की प्रार्थना पुस्तक है। इस वेद में दो सम्प्रदाय प्रसिद्ध थे (1) ब्रहम सम्प्रदाय (2) आदित्य सम्प्रदाय। शतपथ ब्राहम्ण में आदित्य सम्प्रदाय शुक्ल यजुर्वेद के नाम से प्रसिद्ध है। तथा आदित्य सम्प्रदाय का प्रतिनिधि यजुर्वेद है। अन्त हम कह सकते है कि वैदिक ऋषियों ने भारतीय धर्मप्राण जनता के लिए कर्मकाण्ड एवं यज्ञ को आवश्यक एवं अपरिहार्य कर्त्तव्य माना था। वैदिक कर्मकाण्ड में अनेक वेद भी अपना–अपना स्थान रखते है, तो भी उसका प्रधान आधार यजुर्वेद ही कहा जा सकता है।

सामवेद :–

वैदिक संहिताओं में सामवेद का महत्वपूर्ण स्थान है वृहद् देवता का तो यहाँ यह कहना है कि जो व्यक्ति साम को जानता है। वही वेद रहस्य का ज्ञाता हो सकता है।

''सामानि यो वेत्ति स वेद तत्वम'' गीता में भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं ही कहा है वेदानां सामवेदो हमस्मि गीता के कथन से सामवेद की महत्व की जानकारी मिलती है। ऋग्वेद के मन्त्रों के लिए भी सामा शब्द का प्रयोग किया जाता है। सामवेद को दो भागों में बाँटा गया है:–

(1) पूर्वार्चिक (2) उत्तरार्चिक। इन दोनों भागों की समस्त ऋचाएँ 1810 हैं। सामवेद संहिता के उत्तरार्चिक में 400 गीत हैं। उत्तरार्चिक के सभी मन्त्रों की संख्या–1225 है।

निष्कर्ष रूप से इस संहिता का मूल्यांकन करते हुए हम कह सकते हैं कि सामवेद संहिता यज्ञ तथा इन्द्रजाल जादू की दृष्टि से भारतीय इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। संगीत की दृष्टि से गीती तत्व का उद्गम स्थान ही हैं। लेकिन साहित्य की दृष्टि से इसका को महत्व नहीं है।

अथर्ववेद :–

भारतीय संस्कृत के अनुसार वर्तमान जीवन को सुखमय बनाने के लिए जिन उपकरणों की आवश्यकता होती है उन सभी कार्यों के पूजन पाठ के लिए अनुष्ठानों का विधान अथर्ववेद में है। अथर्ववेद की रचना ब्रह्मा नामक यज्ञ के ऋत्विज के लिए हुई है।

अथर्ववेद का अर्थ अथर्वों का वेद अथवा अभिचार मन्त्रों का ज्ञान प्राचीन समय में अथर्वन् शब्द से पुरोहित का बोध होता था। पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में अथर्वण में रोग नाशक, सुखोत्पादक मन्त्र हैं जबकि अंगिरस में अभिचार–मारण, मोहन, उच्चाटन् वशीकरण से सम्बद्ध मन्त्र संगृहीत है। इस प्रकार कह सकते हैं कि अथर्ववेद में रोग निवारक, शत्रु विनाशक अभिचार मन्त्र का वर्णन है। अथर्ववेद में धनोपार्जन की विधि एवं सभी प्रकार के अस्त्र शस्त्रों का वर्णन यिका गया है। साथ ही वायुयान की विशद् चर्चा की गयी है। एक जगह ऐसा यान की चार्च की गयी है कि पृथ्वी जल एवं आकाश तीनों स्थानों पर काम करता था। शल्य चिकित्सा की भी विशद् चर्चा

की गयी है। चारो वेदों से भारतीय संस्कृति का बहुमुखी प्रभाव पड़ा है। समरसता का एक मंत्र या ऋचा में सफल चित्रण किया गया है :–

ऊँ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु।
सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।
ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

यह मंत्र यजुर्वेद से लिया गया है। यह शांति मंत्र है। स्कूलों में कक्षाएं शुरू होने से पहले प्रार्थना के रूप में पढ़ने की परम्परा है। तथा इसका जाप करने से शांति मिलती है। आस–पास के वातावरण भी सकारात्मक होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैदिक संस्कृत एवं संस्कृति बहुत ही उत्कृष्ट थी।

पता :–
कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय दरभंगा, बिहार।
ईमेल आइडी0–pro.prakashaditya1980@gmail.com
Mob No.-8789554967

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 49-53

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय कृषि की सांस्कृतिक परंपरा का किसानों पर प्रभाव : वर्तमान परिपेक्ष्य में

कु. सपना डी. गजबिये

शोधार्थी, विद्याभारती महाविद्यालय, सेलू, रा. तु. म. नागपूर विद्यापीठ, नागपुर।

प्रस्तावना :-

पौराणिक काल से आधुनिक काल तक भारतीय कृषि को सांस्कृतिक सामाजिक ऐतिहासिक और आर्थिक तवज्जो दिया गया है। यहां ऐसे बहुत से त्यौहार है जो सीधे कृषि से संबंधित है। भारत में आधे से ज्यादा आबादी कैसे ना कैसे कृषि से जुड़ी है। कृशि ही जीने का एक जरिया है। अर्थव्यवस्था के विकास में भी कृषि अहम स्थान रखती है।

दुनिया भर में भारत को सबसे अधिक उपजाऊ मिट्टी का देश या कृषि प्रधान देश कहते हैं। यहां पौराणिक काल से विभिन्न फसलों की खेती की जाती है। वेदों–उपनिषदों में भी भारत को खेती की प्राथमिकता वाला देश बताया गया है। प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में कपास, जौ, खजूर और जूट की खेती का वर्णन मिलता है।

भारत में कृषि :-

भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। भारत में कृषि सिंधु घाटी सभ्यता के दौर से की जाती रही है। भारत के अधिकांश उत्सव सीधे कृषि से जुड़े हुए हैं। 1960 के बाद कृषि के क्षेत्र में 'हरित क्रांति' के साथ नया दौर आया। सन 2020 –2021 में भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि एवं संबंधित कार्यों (जैसे वानिकी) का सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में हिस्सा 20.2 प्रतिशत था।

भारतीय कृषि का इतिहास :-

भारतीय संस्कृति में कृषि की गौरवशाली परंपरा दिखाई देती है। पौराणिक काल से कृषि का महत्व है। वैदिक काल में बीजवपन, कटाई आदि क्रियाएं की जाती थी। हल, हंसिया, चूलनी आदि उपकरणों का चलन था। गेहूं, धान, जौ आदि धान्यों का उत्पादन प्रमुख रूप से किया जाता था। चक्रीय परती पद्धति के द्वारा मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने की परंपरा के निर्माण को आगे चलकर पाश्चात्य जगत में भी अपनाया गया। ऐसा यूरोपीय वनस्पति विज्ञान के जनक रोम्सबर्ग का कहना है।

संस्कृत श्लोक :-

1. अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्तेरमस्व
   बहुमन्यमान (ऋग्वेद–34–19)
   अर्थात जुआ मत खेले। कृषि करो और सम्मान के साथ धन पाओ।

2. नारदस्मृति, विष्णु धर्मोत्तर पुराण, अग्नि पुराण आदि में भी कृषि के संदर्भ में उल्लेख मिलते है।
3. ''कृषि पाराशर' कृषि की दृष्टि से एक मान्य ग्रंथ है–जिसमें कुछ विशेष तथ्यों का दर्शन मिलता है।
4. कृषिधन्या कृषिर्मेध्या जन्तूना जीवन कृषिः।

अर्थात कृषि संपत्ति और मेघा प्रदान करती है तथा कृषि ही मानव जीवन का आधार है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मौर्य राजाओं के काल में कृषि, कृषि उत्पादन आदि को बढ़ावा देने हेतु कृषि अधिकारी की नियुक्ति का वर्णन मिलता है। भारत की स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय कृषि पर सबसे अधिक दुष्प्रभाव पड़ा यह दिखाई देता है। इस काल में अंग्रेजी स्वार्थवाद और लूटपाट का भारतीय अर्थव्यवस्था शिकार हो गई थी। इसका परिणाम सभी क्षेत्रों में कम–अधिक दिखाई देता है। वस्तुतः यह भारतीय कृषि क्षेत्र के शोषण काल का समय था जिसके परिणाम स्वरुप कृषि की हालत बदतर हो गई।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में हर क्षेत्र के विकास के लिए योजनाएं बनाई। अर्थव्यवस्था की गाड़ी विकास की पटरी पर लाने के लिए जो योजनाएं बनाई। उसमें कृषि क्षेत्र अग्रस्थान पर था। 1960 के दशक के मध्य तक पारंपरिक बीजों का कृशि के लिए इस्तेमाल करने लगा और इसकी उपज अपेक्षाकृत कम ही थी। उन्हें सिंचाई की कम आवश्यकता पड़ती थी। भारतीय किसान उतने शिक्षित नहीं थे। कृषि के लिए परंपरागत उर्वरक के रूप में गाय के गोबर आदि का प्रयोग करते थे।

1960 के बाद उच्च उपज बीज (HYV) का प्रयोग शुरू हुआ। इसके कारण सिंचाई और रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रयोग बढ़ गया। इस कृषि में सिंचाई की अधिक आवश्यकता पड़ने लगी। इसके साथ ही गेहूं और चावल के उत्पादन मैं काफी वृद्धि हुई। जिसके कारण इसे 'हरित क्रांति' भी कहा जाता है। (कृषि संबंधित अनुसंधान केंद्र, राष्ट्रीय पूर्व एवं निर्देशालय)

कृषि और संस्कृति :–

कृषि दो लैटिन मूल भाब्द से लिया गया है। कृषि जिसका अर्थ है– क्षेत्र और 'संस्कृति'। जिसका अंग्रेजी में दोहरा अर्थ है – खेती या जीवन का एक तरीका। कृषि का यह दोहरा अर्थ संस्कृति और कृषि के बीच एक विशेष संबंध प्रदान करता है।

भारत में कृषि एक व्यवसाय ही नहीं एक संस्कृति भी है। भारत की परंपरागत परिदृश्य में कृषि एक व्यवसाय ही नहीं बल्कि जीवन जीने की एक भौली, एक विज्ञान और सबसे बढ़कर एक संस्कृति भी है। यही कारण है कि यहां के बहुत से लोग अन्न को ब्रह्मा तथा कृषि धरती को माता का रूप मानते हैं।

''नदियाँ है जीवन धारा
परंपरा और संस्कृति का सार,
बिन कृषि के हैं अधूरा।''

भारतीय संस्कृति अपने वैदिक काल से लेकर हमारे समय तक कृषक समाज की चेतना का नियमन करती आ रही है। कृषि केवल वन संपदा के विनाश से ताल्लुक रखने वाली सभ्यता ही नहीं है इसके बजाय यह प्रकृति पूरक विकास की ओर बढ़ने की संभावनाओं से मुक्त एक संस्कृति भी है।

संशोधन की आवश्यकता और महत्व :–

पौराणिक काल से आज के आधुनिक काल तक भारतीय कृषक कृषि को अपनी माता समझते हैं।

ज्यादातर कृषक आज भी परंपरागत साधनों का ही इस्तेमाल करते हैं खेती के लिए। उन्हें ना ही इतना ज्ञान है कि कृषि को कैसे आधुनिक तरीके से किया जाता है और ना ही उनके पास इतना पैसा है की उस तरीके से साधन खरीद सकें। हमारी आबादी की 67 प्रतिशत आबादी खेती से जुड़ी है। लेकिन उनकी मानसिकता आज भी पुराने तरीके ही अपनाने पर जोर देती है।

आज भी हमारी कृषि बारिश के जल पर निर्भर है। कोई भी 5 साल की जानकारी अगर हम देखें तो उसमें 3 साल में अकाल ही दिखता है या तो सूखा या फिर गिला। अगर नहीं तो फिर भी मार पढ़ती है वह कृषि पर ही। क्योंकि उत्पाद ज्यादा हुआ तो भाव नहीं मिलता और अगर उत्पाद कम हुआ तो भी मुनाफा बीच वाले व्यापार ही खा जाते हैं।

वर्तमान परिपेक्ष्य में भारतीय कृषि की सांस्कृतिक परंपरा का किसानों पर प्रभाव देखने का प्रयास इस संशोधन के जरिए किया गया है। पौराणिक से आधुनिक काल तक हमारी सांस्कृतिक परंपरा का किसानों पर किस तरह असर कर रहा है और किसानों की आर्थिक स्थिति को किस तरह सुधार सकते हैं यह देखना प्रस्तुत संशोधन का मुख्य हेतु है।

संशोधन के उद्देश्य :-

प्रस्तुत संशोधन के निम्नलिखित उद्देश्य है-

1. किसानों की आर्थिक बदहाली कैसे हो रही है?
2. वर्तमान में किसानों के वैयक्तिक और पारिवारिक स्थिति पर क्या प्रभाव दिखायी दे रहा है?
3. किसान किस तरह परेशानियों से जूझ रहे हैं?
4. ''किसानों की आत्महत्या'' यह एक गहन विषय बन कर सामने आ रहा है।
5. वर्तमान समय में किसानों पर पर्यावरण और मौसम का क्या प्रभाव पड़ रहा है?
6. भारत में पौराणिक काल से लेकर आज तक के आधुनिक काल तक खेती का स्वरूप काफी हद तक बदल गया है। किसान बाजार मांग के हिसाब से खेती करते हैं।

प्रस्तुत संशोधन के तथ्यों को संकलित करने के लिए द्वितीयक सामग्री का इस्तेमाल किया गया है। जिसमें आलेख, शोध आलेख, पुस्तके, न्यूजपेपर तथा वेबसाइट आदि का प्रयोग किया गया है।

''धरती का सीना चिरकर
हरा सोना कृषक उगाएं।
सारी दुनिया के जिने का
आधार ही बन जाते।''

कृषक पृथ्वी पर एक श्रमिक की तरह अन्न उपजाता है। अपनी सारी उम्मीदें और मेहनत से धरती पर खेती करता है। कमी मौसम की मार, तो कभी पर्यावरण की परिस्थिति से उथल–पुथल सहता है। वर्तमान काल में कृषि क्षेत्र सबसे हानी वाला क्षेत्र बनता जा रहा है और उसकी वजह से किसानों की स्थिति दिन–ब–दिन बिगड़ती जा रही है।

आधुनिकता के नाम पर बड़े–बड़े प्रकल्प के लिए कितनी सारी हेक्टर खेत जमीन पहले ही ले ली गई है। नैसर्गिक साधन–संपत्ती खत्म होती जा रही है। नैसर्गिक धोके बढ़ गए है। जंगल कम होते जा रहे हैं। खेती

में ज्यादा रासायनिक खतों का इस्तेमाल करके खेती की गुणवत्ता भी नष्ट की जा रही है। सन 2011 में खाद्य और कृषि संगठन (F.A.O.) ने जागतिक स्तर पर 25 प्रतिशत धरती (खेती योग्य) की सेहत बिगड़ गई है, ऐसा बताया है।

''किसान गंभीर संकट
में फंसता जा रहा है।
कम पैदावार, आधुनिकता, महंगाई,
सबकी मार खा रहा है।''

भारतीय किसान कभी नैसर्गिक/मौसमी तो कभी मानवनिर्मित संकट से जूझ रहा है।

पौराणिक काल से आधुनिक काल तक,
कृषि है हमारी सांस्कृतिक परंपरा की जान।
अर्थव्यवस्था देश विकास,
सब की रीढ़ का है यह मान।
तीव्र विकास की भूख ने,
मानव मन–मस्तिष्क को जकड़ा है।
कृशि के सांस्कृतिक जैविक रूप को,
तहस–नहस करके रखा है।

कृषि केवल वन संपदा के विनाश से ताल्लुक रखनेवाली सभ्यता नहीं है, यह प्रकृति पूरक विकास की ओर बढ़ने की संभावनाओं से युक्त एक संस्कृति भी है। सभ्यता जनित तीव्र विकास की लालसा ने मानव जाति के मनो–मस्तिष्क को इस कदर जखड़ लिया है की कृशि से ताल्लुक रखने वाला उसका सांस्कृतिक पक्ष गौण होकर पृष्ठभूमि में धकेल दिया गया है।

सरकार ने फसल बीमा योजना के द्वारे एक रुपए में बीमा और ऐसी बहुत सी योजनाएं लागू की है। किसान एप दी है। लेकिन सारी बातें आकर रुक सी जाती है। क्योंकि किसानों मैं शिक्षा का अभाव भी दिखता है। आर्थिक, मानसिक और सामाजिक चारों ओर से उन पर असर पड़ता है। कहते हैं– ''हम सब नाटक कर सकते हैं। लेकिन पैसे का खेल, नौटंकी नहीं कर सकते हैं।'' कुछ इसी तरह किसानों की स्थिति हो रही है। आर्थिक बदहाली की वजह से महाराष्ट्र के कुछ गांव के किसानों में आत्महत्या की प्रवृत्ति बढ़ गई है। तब जाकर सरकार की नींद खुली और उन्होंने कर्ज वसूली माफ कर दी। कहते हैं– जिस देश का किसान ही भूखा रहा वह देश कैसे आगे बढ़ सकता है?

निष्कर्ष एवं समाधान :–

1. किसान पूरी तरह से खेती पर ही निर्भर रहते है। यह उनके जीने का एकमात्र जरिया होता है। लेकिन कृषि में जोखिम ज्यादा होती है। अगर यह जोखिम को कम करने के लिए प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना कार्यान्वित की गई है। फसल बीमा योजना किसानों के लिए एक वरदान की तरह ही है। उसमें नैसर्गिक खाने के साथ–साथ अन्य कारणों से भी हुई हानि से राहत दी गई है और लेने के लिए किसी भी किसानों पर किसी प्रकार का कोई भी दबाव नहीं है। यह योजना सभी किसानों के लिए खुली है। बहुत कम बीमा हफ्ता की राशि

रखी गई है और तो और यह योजना सभी किसान के लिए है।

2. 50 साल पहले से आज तक देखे तो लगभग सारे क्षेत्रों में विकास दिखता है। फायनान्स कंपनी, बैंक व्यापार के लिए तो लोन देती है, लेकिन कृषि के लिए उतना नहीं। इसी उलझन को कम करने और खेती में वित्त की समस्या से निपटने के लिए लोन की सुगमता, किसान क्रेडिट कार्ड के लिए बैंकों पर कड़े नियम लागू है। उस वजह से किसानों को राहत मिलती हैं और उनका जीवन आसान होता है। पहले उन्हें साहूकारों के चंगुल में फंसा रहना पड़ता था। लेकिन अब तो बैंक से कम ब्याज पर फसल के लिए साधन–सामग्री के लिए कर्जा ले सकते हैं।

3. कहा जाता है– किसानों का जीवन मौसम की मार का शिकार होता है। किसी साल अच्छी बारिश हुई तो अच्छा उत्पादन हुआ। लेकिन अच्छा उत्पादन से मतलब अगर मांग से ज्यादा उत्पादन रहा तो उत्पाद का मूल्य खर्चे से भी कम होता है और अगर मौसम की मार बारिश ठीक से नहीं हुई तो फिर कुछ भी हाथ नहीं लगता। इस दोहरे संकट से बचने के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य की पहल सामने आई है।

4. किसानों की आय में कुछ ज्यादा फर्क नहीं पड़ा है। सरकार का लक्ष्य 2022 तक किसानों की आय को दोगुना करने का था। लेकिन उसका उतना असर दिखाई नहीं दिया है। उनकी हालत में सुधार नहीं दिखता है।

5. नई सरकार आती है नईःनई योजनाएं आती है और पुरानी योजनाएं बंद करती है। इन सब का किसानों पर बुरा असर पड़ता है। हर बार की यही कहानी है। इसी वजह से किसान हतबल हो जाते हैं। उनकी मानसिक स्थिति खराब हो जाती है और वह 'आत्महत्या' की ओर बढ़ता है।

6. कृषि पर सबसे ज्यादा असर पड़ता है, वह है पर्यावरण का बढ़ता तापमान और प्रदूषण। इस कारण मौसम का संतुलन खराब हो जाता है। विकास के नाम पर औद्योगिकरण और इसकी वजह से जंगल खत्म हो रहे हैं। यह सब हम खत्म तो नहीं लेकिन कम कर सकते हैं। इस पर कड़क कानून हमें लागू करने होंगे।

संदर्भ सूची :–

1. गायकवाड, मुकुंद (2014), भारताचे कृषि अर्थशास्त्र. पुणे कॉन्टिनेंटल प्रकाशन।
2. Ray, P.K. (1991) - A practical guide to multi&risk crop insurance for developing
3. https://maharashtratimes.com/editorial/article/problems.of.crop.insurance.in
4. https://www.agree.gov.in
5. www.agreetrust.org
6. www.agreetrust.org
7. www.indiagreenmoney.in
8. www.indiaagreereality.com
9. www.mahaagree.com
10. www.marathimati.net
11. www.agreeindia.com

पता– समता नगर, सावंगी मेघे रोड, वर्धा, त. जि. वर्धा पिन कोड– 442001 (महाराष्ट्र राज्य)
ई–मेल – sapanajt18@gmail.com, मोबाईल नं. –7020481428

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 54-58

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय संस्कृति : "जागु जीव जड़"

डॉ. एन.एल. मिश्रा

अधिष्ठाता, कला संकाय, म.गां. चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना, म.प्र.।

सारांश :-

महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी 'जीव' को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे जीव! तू अपनी मूढ़ता का त्याग करके अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान और उसे भली–भाँति समझकर इस अथाह संसार के वाह्य स्वरूप पर मोहित होकर आसक्त न हो। इस परम आकर्षक, मनमोहक तथा क्षण–क्षण में परिवर्तनशील अथाह संसार की भूल–भुलैया में अपने को फँसाकर तू अपने को पतन के रास्ते पर न ले जा। इस अथाह संसार रूपी मोहरात्रि में अपने आप को अज्ञान रूपी पाश में मत फँसा। इस प्रकार के बंधन में फंसने पर तुम अपने जीवन क्षेत्र में नाना प्रकार के भ्रमपूर्ण, सुनहले स्वप्नों की भूल–भुलैया एवं दुराशा की हजारो फांसियों में अपने को बेतरह उलझाकर नाना प्रकार के दुःसह एवं मार्मिक कष्ट झेलोगे। तुम्हें कोई आनन्दप्रद तत्व की प्राप्ति भी नहीं होगी। तुम अपने जीवन के वास्तविक ध्येय से, जो परम आध्यात्मिक तत्व की प्राप्ति है, भटक जाओगे। उस परम दयालु जगन्नियंता की समग्र सृष्टि में जितने भी शरीरधारी प्राणी हैं उनमें मानव को सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम पद प्राप्त है। ऐसा कहा जाता है कि सारी सृष्टि के सभी प्राणियों का सृजन करने के बाद भी सृष्टिकर्ता को सन्तोष एवं प्रसन्नता की प्राप्ति नहीं हुई। इसलिए उसने अपने तपोबल तथा अलौकिक एवं दिव्य प्रतिभा सम्पन्न मेधाशक्ति द्वारा विचार करके मानव की सृष्टि की। अपनी इस अद्भुत एवं विलक्षण कृति से सृष्टिकर्ता अत्यन्त प्रभावित एवं आनन्दविभोर हो उठा। इसीलिए उसने मानव को अपनी सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम कृति की संज्ञा प्रदान की।

सृष्टिकर्ता की इस विविधता सम्पन्न एवं बहुरंगी कृतियों में चार प्रकार के प्राणी एवं चौरासी लक्ष योनियाँ हैं। इन योनियों के अतिरिक्त मानव योनि के प्राणी हैं। सभी योनियों के चार प्रकार के प्राणी मानव के अतिरिक्त भोग योनियों के जीव माने जाते हैं। केवल मानव को ही अपने किए हुए शुभ एवं अशुभ कर्मों के फल अन्य योनियों के प्राणियों की तरह भोगने तो पड़ते हैं, परन्तु सृष्टिकर्ता द्वारा मानव को नवीन कम करने का विशेष अधिकार भी प्रदान किया गया है। मानव अपने शुभ–अशुभ कर्म करने में पूर्णतः स्वतन्त्र है। इसके साथ ही उसको प्राप्त तीन प्रकार के शरीर (स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण) में ऐसे साधन रूपी यंत्र लगे हुए हैं जिनके द्वारा उसे अपने स्व–स्वरूप, पर– स्वरूप, संसार के वास्तविक स्वरूप एवं भगवत्स्वरूप को जानने की ओर प्रवृत्त होने में सहायता मिलती है। मानव अपने उत्कृष्ट, उत्तम एवं शुभ विचारों और भावों से प्रेरित हो शुभ कार्य के सम्पादन द्वारा अशुभ कर्मजनित दुष्परिणामों से स्वयं को बचा सकता है। मानव का सूक्ष्म शरीर जो सत्रह तत्वों से निर्मित हैं उसमें अन्तःकरण रूपी यंत्र लगा हुआ। मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार की संज्ञा अन्तःकरण है, इसे अन्तःकरण चतुष्टय

भी कहा जाता है। अन्तःकरण में मन रूपी यंत्र संकल्प विकल्पात्मक शक्ति है। इस शक्ति के माध्यम से नाना प्रकार की विचार तरंगें उठती रहती हैं। यह चित्त चिन्तन करने वाली शक्ति के अलावा शुभ एवं अशुभ विचारों, स्फुरणाओं एवं कृतियों के सूक्ष्म संस्कारों को संग्रहीत करने वाला यंत्र भी है। बुद्धि निश्चय करने वाली शक्ति है और अहं शक्ति द्वारा यह जीव अपना सम्बन्ध इस संसार में जोड़ता है। निजता, ममता, तू, तब आदि इसके रूप हैं।

उपनिषद में भी ऋषिगण मनुष्यों को सम्बोधित करके उन्हें सावधान होने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं कि–

'उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत्।
क्षुरस्य धारा निशिता दूरत्यया दुर्गम् पथस्तत कवयोः वदन्ति।'[1]

अर्थात् 'उठो, जागो और सावधान, सजग एवं सचेत हो जाओ और ज्ञान–सम्पन्न श्रेष्ठ पुरुषों के सम्पर्क में आकर ज्ञान–वार्ता द्वारा अपने वास्तविक आत्मस्वरूप को पहचानो।' कारण कि तुम को संसार यात्रा के अत्यन्त कठिन मार्ग का अनुगमन करना है। इस मार्ग पर चलना वैसा ही कष्टकारी है जैसे कि तलवार की धार पर चलना। इस संसार यात्रा को सफल बनाने के पूर्व इस मार्ग में अनेकानेक विकट एवं विकराल कठिनाइयाँ आयेंगीं। इन कठिनाइयों से अपने ज्ञान रूपी साधन द्वारा घोर संघर्ष करना पड़ेगा। यदि संघर्ष नहीं किया गया तो इस संसार में तुम्हारी जीवन यात्रा सकुशल सफल एवं सम्पन्न होने में अनेकानेक व्यवधान आ सकते हैं। हम सब लोग यात्री रूप में इस संसार सागर में आये हैं। सन्त कबीरदास जी के शब्दों में कहा जाय तो यह संसार आत्मा रूपी पथिक के लिए वीराना है। यह हमारा अपना धाम नहीं है। यहाँ हम लोग संसाररूपी धर्मशाला में ठहरे हुए हैं। यहाँ अनेक प्रकार के लुभावने, भ्रम उत्पन्न करने वाले तथा सत्यपथ से भ्रष्ट करने वाले प्रलोभन पदार्थ मौजूद हैं। इस प्रकार के प्रलोभन पदार्थों से हमें सजग, सावधान एवं सचेत रहने की जरूरत है अन्यथा हम लोग अपने आध्यात्मिक लक्ष्य से पथच्युत हो जायेगें। इस संसार के सारे सम्भार, पद–पदार्थ, धन–जन–वैभव और कुलदृकुटुम्ब सभी क्षण–स्थाई एवं नश्वर है। इनकी भूल–भुलैया में पड़कर मोहित एवं आसक्त होना अपने को मुसीबत में डालना है। जिस प्रकार पलाश एवं सेमल के पुष्प देखने में अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक होते हैं किन्तु उनमें कोई भी सार तत्व नहीं होता है केवल सूखी हुई निस्सार रुई ही होती है ठीक उसी प्रकार की दशा इस संसार और इससे सम्बन्धित समस्त साजो समान एवं पदार्थों की भी है।

यह संसार निस्सार एवं विनाशशील है, इसमें कोई सार तत्व नहीं है। इसके मायारूपी झमेलों में पड़कर जीवन को केवल नष्ट करना है। भगवद् शरणागति एवं प्रभु के नाम की निष्ठा रखने में ही जीव का परम कल्याण है। मनुष्य के सूक्ष्म शरीर में आत्मज्ञान रूपी रत्नों को लूटने के लिए तीन प्रबल एवं भयंकर डाकू काम, क्रोध और लोभ अपनी पैठ बनाये हुए हैं। इन डाकुओं से सावधान रहकर अपने आत्मज्ञान रूपी अनमोल रत्न को सुरक्षित रखने के लिए समय–समय पर आचार्यों ने सजग किया है कि–

जन्म दुःखं, जरा दुःखं, जाया दुःखं, पुनः पुनः।
संसार सागरं दुःखं, तस्माद् जाग्रत जाग्रत।।

प्राणी के जीवन में जीवन–मरण एवं वृद्धावस्था के दुःसह दुःख लगे रहते हैं। इस संसार रूपी सागर से पार होने में अनेकानेक कठिनाइयाँ एवं अड़चनें हैं। अर्थात् 'संसार दुःखों का सागर है।' इस सम्बन्ध में गोस्वामी

तुलसीदास जी ने भी कहा है कि– "जनमत मरत दुसह दुख होई।'[2]

अर्थात् जन्म धारण करने में जीव को माता के गर्भ में रहकर नाना प्रकार के कष्ट सहन करने पड़ते हैं। शरीर का त्याग करने के पूर्व भी रोगादि से पीड़ित होकर उसे देह सम्बन्धी पीड़ा एवं मानसिक संतापों का शिकार होना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में जन्म–मरण के बन्धन से मुक्त होकर उस परम कारूणिक जगन्नियन्ता परमपिता परमेश्वर का ध्यान एवं भजन करने में ही आत्म कल्याण है। ध्यान एवं भजन के फलस्वरूप प्रभु का सान्निध्य प्राप्त करना ही मानव जीवन का वास्तविक ध्येय है।

गोस्वामी तुलसीदास जी अपने 'विनय' के एक पद में 'जीव' को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि– 'हे जड़ जीव! उठो; कुम्भकर्णी निद्रा त्यागकर जागो अर्थात् अपने आत्म–स्वरूप में स्थित हो जाओ। इस संसाररूपी रजनी, जो मोहांधकाराच्छन्न है, को आँख खोलकर देखो अर्थात् सचेत होकर चतुर्दिक दृष्टिपात करो। इस कथन का आशय यह है कि यह जीव चिरकाल से मोह रूपी रात्रि में भटक रहा है। ऐसी दशा में उसको अज्ञान रूपी निद्रा का त्याग कर इस स्वार्थी संसार के वास्तविक रूप को पहचान कर इसके वास्तविक स्वरूप को देखना चाहिए। मानव शरीर तो पंचतत्व से निर्मित होने के कारण अल्प स्थायी एवं नश्वर है। इसीलिए तत्सम्बन्धी मोह एवं ममता भी मूर्खतापूर्ण है। मानव जीवन सम्बन्धी जितने भी नामधारी सुख के साधन है जैसे– धन, धाम, कुटुम्ब, परिवार, माता–पिता, भाई–बन्धु एवं स्वर्गादिक का व्यवहार तथा तज्जनित मोहयुक्त सुख वैसा ही क्षण–स्थायी है जैसे बादलों के बीच की बिजली जो क्षण भर में चमककर लुप्त हो जाती है। अतः पूज्यपाद गोस्वामी जी की अनुभूत मान्यता है कि सांसारिक सुख व दुख तो वास्तव में कुछ नहीं है, वे तो मृग–जल और रस्सी के सर्प के समान हैं। भ्रमवश मृग को सूर्य की किरणों में जल का आभास होता है। रस्सी के सांप का तो अस्तित्व ही नहीं है तो उसके द्वारा डसे जाने का भय ही कहां है? मृग–जल में पानी का नितान्त अभाव है तो उसमें डूबने के भय का प्रश्न ही कहां उठता है? चारों वेद एवं मनीषी विद्वानों की मान्यता है कि– 'स्वप्न के सारे दुःख एवं दोष जागने पर ही दूर होते हैं, अन्यथा नहीं।' इस तर्क को प्रत्येक विचारशील मानव को भी स्वयं भी अनुभव करना चाहिए। पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदास जी का भी यही कहना है कि सांसारिक ताप (दैहिक, दैविक एवं भौतिक) जागने पर ही अर्थात् ज्ञान का उदय होने पर ही नष्ट होते हैं। सांसारिक सुख में सुखी होना और उसके दुख में दुखी हो जाना केवल भ्रम है, उसमें कोई सार तत्व नहीं है। अतः प्रत्येक जीवधारी को अपने आत्मस्वरूप को भली–भांति पहचानकर प्रभु के भजन में दत्त–चित्त होना चाहिए। विडम्बना यह है कि यह तब तक सम्भव नहीं है जब तक जीव सांसारिक मोह, माया व ममता से ग्रसित है। यह मोह, माया व ममता तभी दूर होगी जब प्राणी भगवद्भक्त सत्पुरुषों की सत्संगति में रहकर हरि–कथा का अनुरागी बन जाय। क्योंकि गोस्वामी जी कहते हैं कि–

बिनु सतसंग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम पद, होइ न दृढ़ अनुराग।।[3]

मानव जीवन का लक्ष्य भी तो रामपद का निश्छल अनुराग ही है, यह प्रेम मोह के नष्ट हुए बिना सम्भव नहीं है।

उपर्युक्त भावों को गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी 'विनय पत्रिका' के एक पद में कुछ इस प्रकार से व्यक्त किया है :–

जागु जागु जीव जड़!
जोहै जग जामिनी।
देह गेह नेह जानि,
जैसे घन दामिनी।।
सोवत सपनेहूं सहै
संसृति संताप रे।
बूड़यो मृग– बारि,
खायो जेवरी को सांप रे।।
कहै वेद बुधहू तो
बूझ मन मांहि रे।
दोष–दुख सपने के
जागे ही पै जाहि रे।।
तुलसी जागे ते जाइ
ताप तिहूं ताप रे।
राम नाम सुचि रुचि
सहज सुभाय रे।।'[4]

गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' में श्री लक्ष्मण जी के मुख से भी कहलाया है कि –

मोह निसा सब सोवनि हारा।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा।।
एहि जग जामिनि जागहि जोगी।
परमारथी प्रपंच बियोगी।।
जानिअ तबहि जीव जग जागा।
जब सब विषय बिलास विरागा।।
सखा परम परमारथ एहू।
मन कम बचन राम पद नेहू।।

उपर्युक्त चौपाइयों के माध्यम से गोस्वामी जी ने बताया है कि जनसाधारण इस संसार रूपी रात्रि में सो रहे हैं अर्थात् वे अपने आत्म–स्वरूप को न पहचानकर सांसारिक प्रलोभनों में फंसकर अपने जीवन के वास्तविक उद्देश्य से विमुख हो रहे हैं परन्तु दूसरी ओर वे भगवद्भक्त हैं जो अपने आत्म–स्वरूप से सचेत होकर भगवद् भजन करते रहते हैं। वे सांसारिक प्रपंच में नहीं फंसते हैं। वे इन्द्रियजनित तथा विषयजनित सुखों में लिप्त नहीं होते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि उनमें वास्तविक और स्थायी सुख नहीं है। ऐसे मनुष्यों का लक्ष्य तो केवल और केवल भगवद् प्राप्ति है। इसी तथ्य को भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है–

'या निशा सर्वभूतानाम् तस्यां जागर्ति संयमी'।[6]

अर्थात् इस संसाररूपी रात्रि में भोगी लोग जागते है अर्थात् संयमी पुरुष जो अपनी इन्द्रियों को वश में

करके सांसारिक विषय वासनाओं से मुंह मोड़कर भगवद् भजन में अहर्निश संलग्न रहते हैं। ऐसे ही भगवद् भक्त सत्पुरुषों के सम्बन्ध में उपर्युक्त बातें कही गई हैं कि योगी लोग मोह–ममता से अपने को पृथक कर प्रभु के ध्यान एवं भजन में अपने जीवन के बहुमूल्य समय का सदुपयोग करते हैं। इसी में जीवन की सार्थकता है।

गोस्वामी जी ने "ईश्वर' और 'जीव' की बड़ी ही सुन्दर व्याख्या की है–

ईश्वर अंस जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।।[7]

ईश्वर सच्चिदानन्द रूप है, आत्मा भी उसी का अंश होने के कारण वह भी सच्चिदानन्द रूप ही है, परन्तु अपनी सांसारिक यात्रा में पंच–भौतिक शरीर में प्रविष्ट होने पर उसकी संज्ञा जीवात्मा की हो जाती है। वह अपने वास्तविक सच्चिदानन्द स्वरूप को विस्मृत कर सांसारिक विषय वासना में आसक्त होकर इन्द्रियों का दास बन जाता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, जिनको अन्तःकरण के नाम से जाना जाता है, इनको अन्तःकरण चतुष्टय भी कहा जाता है। आत्म विस्मृति के फलस्वरूप बुद्धि के मलीन होने से वह मन के आधीन हो जाती है। मन स्वभावतः चंचल होने से इन्द्रियों का अनुगामी बन जाता है। इन्द्रियां स्वभावतः अधोगामिनी हैं इसलिए वे शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गंध के चक्कर में पड़कर सांसारिक विषय वासना का रसपान करने लगती हैं। इस प्रकार अन्तःकरण में प्रकृति राज्य के स्थापित होते ही जीवात्मा घोर संसारी हो जाती है। उस समय वह जन्म–मरण के दुःसह दुःखों को सहता हुआ अनेक योनियों में भ्रमण करता एवं भटकता रहता है। उस समय उसकी बड़ी दुर्दशा होती है। उसकी ऐसी असहाय एवं दारूण अवस्था को देखकर करूणानिधि ईश्वर को भी दया करके उसे मानव शरीर प्रदान करने के लिए विवश होना पड़ता है। मानव शरीरधारी जीव सद्ग्रन्थों एवं साधु–सन्तों के उपदेशामृत से लाभान्वित होकर जब अपने स्वरूप से अवगत होता है तब वह भगवद् भजन की ओर उन्मुख होता है। उसके अन्तःकरण में आत्म राज्य स्थापित हो जाता है। उस समय उसके हृदय में भगवद्–भक्ति की गंगा बहने लगती है। उस समय वह अपने जीवन का लक्ष्य भगवद् प्राप्ति कर लेता है, इसी में मानव जीवन की सार्थकता है।

संदर्भ–सूची :–

1. उपनिषद।
2. रामचरितमानस।
3. रामचरितमानस।
4. विनय पत्रिका।
5. रामचरितमानस।
6. श्रीमद्भगवद्गीता।
7. रामचरितमानस।

मोबाइल– 9584542852

Email : nandlalmishra11@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 59-63

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय संस्कृति में चेतना का स्वरूप

डॉ. गौरव गौत्तम, Assistant Professor,
SKS Ayurvedic Medical College & Hospital, Vill-Chaumuhan, Tehsil- Chhata- Dist- Mathura-281406

चेतना शब्द चित् संज्ञा ने धातु से सम्पन्न हुआ है, अंग्रेजी में चेतना को Consciousness कहते हैं जिसका अर्थ है– 1. ज्ञान 2. बुद्धि 3. याद, स्मृति 4. चेतनता 5. जीवन 6. सोचना 7. समझना, होता में आना 8. सावधान होना आदि। जो मस्तिष्क की जागृत अवस्था किसी वस्तु के विषय में ज्ञान जानकारी अथवा विचार को घोषित करते हैं। चैतन्य, अनुभव, बोध, अन्तर्बोध, प्रमा, सुखानुभव, दुःख–वेदन आदि भी इसी के अर्थ हैं।[1] सर विलियम हेमिल्टन ने चेतना को परिभाषित करते हुए कहा है– ''चेतना की परिभाषा नहीं की जा सकती। हम केवल यह अनुभव कर सकते हैं कि चेतना क्या है लेकिन हम चेतना को जो समझते हैं जैसा अनुभव करते हैं बिना किसी उलझन के दूसरों को नहीं बता सकते हैं'।[2]

कुछ जीवधारियों में स्वयं के और अपने आसपास के वातावरण के तत्वों का बोध होने उन्हें समझने तथा उनकी बातों का मूल्यांकन करने की भाक्ति का नाम है।[3]

'हिन्दी साहित्य कोष' के प्रधान संपादक धीरेन्द्र वर्मा ने चेतना के विषय में लिखा है कि ''चेतन मानस की प्रमुख विशेषता है'' अर्थात् वस्तुओं, विषयों व्यवहारों का ज्ञान।''[4]

मनक हिन्दी कोष के लेखक रामचन्द्र वर्मा के अनुसार ''चेतना मन की वह वृत्ति या भक्ति है जिससे जीव या प्राणी को आन्तरिक अनुभूतियों भावों और बाह्य घटनाओं तत्वों या बातों का अनुभव या भाव होता है।''[5]

डॉ. रमेश कुन्तल मेघ के अनुसार– ''चेतना में नाना भांति की मानसिक क्रियाएं शामिल हैं जैसे संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, अवधारणा, चिन्तन अनुभूति और संकल्प। इसे 'चिति' भी कह सकते हैं। चेतन एक चिन्तनात्मक अभिवृत्ति का द्योतक है जो व्यक्ति को स्वयं के प्रति तथा विभिन्न कोटि की स्पष्टता तथा जटिलता वाले पर्यावरण के प्रति जागरुक करता है।[6]

वैज्ञानिक तथ्यों ने भी पुष्ट कर दिया है कि चेतना मानव मस्तिष्क का वह गुणधर्म है, जिसके द्वारा हमें अपने आस पास की घटनाओं का बोध प्राप्त होता है और हम विश्व को जान पाते हैं। अतः चेतन के लिए मस्तिष्क ही नहीं अपितु पदार्थ अथवा वस्तुओं का होना भी आवश्यक है जो मस्तिष्क पर प्रभाव डालते हैं। विभिन्न विद्वानों के चेतना सम्बन्धी विचारों के पश्चात संक्षेप में कहा जा सकता है कि चेतना मानव में एक ऐसी भाक्ति की प्रक्रिया है जिसके बिना मनुष्य कोई काम नहीं कर सकता। यह मनुष्य की वह विशेषता है जो उसे जीवित रखती है और जो उसे अपने विषय में अपने वातावरण के विषय में ज्ञान कराती है। उसी ज्ञान को विचार भाक्ति कहा जा सकता है।

दूसरों शब्दों में हम कह सकते हैं कि चेतना मानव में उपस्थित वह तत्व है जिसके कारण उसे सभी प्रकार की अनुभूतियां होती हैं। चेतना से प्रेरित होकर ही मानव देखता है, सुनता समझता और अनेक विषयों पर चिन्तन करता है। चेतन या जाग्रत मन अवचेतन या अर्ध–जाग्रत मन पर इन दोनों से व्यापक अचेतन मन है जो हमारी इच्छा शक्ति और चेतनस्वरूप से परे है और उससे सम्पर्क सामान्य अवस्था में नहीं किया जा सकता है चेतन मन को सुप्त या अचेतन {अन्–कांशियस} मन भी कहा जा सकता है।

मानव को सुख दुःखादि की अनुभूति चेतना के ही कारण होती है। वस्तुतः चेतना मानव मस्तिष्क में प्रवाहमान वह शक्ति है जो मनुष्य को निरन्तर चैतन्यता प्रदान करती है। चेतना ज्ञानात्मक, भावात्मक, और क्रियात्मक त्रिविधा है। चेतना का गति नामक गुण ही उसमें परिवर्तन का कारण होता है। चेतना के अभाव में गतिविहिनता दिखाई देती है। चेतना मन की ही एक विशेषता है। दर्शन एवं अध्यात्म के क्षेत्र में 'आत्मबोध' ही चेतना है। साहित्य एवं दर्शन में चेतना के लिए चैतन्य शब्द का प्रयोग हुआ है। अध्यात्म में परम चेतन तत्व के सत्–चित्–आनन्द स्वरूप का कथन है किन्तु वह सच्चिदानन्द प्रकाश रूप भी है–

सच्चिदानन्द रूपाय विश्वोत्पत्यादि हेतवे।
तापत्रय विनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः।।[7]

सत् चित आनन्द यह रूप भारी।
और चौथे परकाश अपारी।।[8]

वैदिक तथा अवैदिक धर्म संहिताओं में सदाचार तथा आत्म–चेतना पर बल दिया गया है। वेदों और उपनिषदों में चेतन–शक्ति–विज्ञान का वर्णन है किन्तु वह वर्णन अव्याकृत ब्रह्म या सुन्न देश की चेतना तक ही सीमित है।[9]

चेतना के रूप–स्वरूप के स्पष्टीकरण हेतु सृष्टि पूर्व में चेतना, अव्यक्त चेतना, चेतना का रूपान्तरण, देह रूप में चेतना, चेतना प्राप्ति के साधन यथा श्रृद्धा–भक्ति, पूजा–आरती, योग–आसन, भजन–ध्यान, आदि क्रियाएं तथा अन्त में साध्यरूप चेतना के सागर में लय आदि विषयों का ज्ञान अपेक्षित है। श्रीमद्भागवत महापुराण चतुर्थ स्कन्ध में नवधा भक्ति के रूप में वर्णित –

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्।।[10]

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, तथा आत्म निवेदन ये आत्मचैतन्य को जाग्रत करने के सगुणोपासना स्वरूप नौ उपाय या साधन कहे गये हैं।

वेदोपनिषद् एवं सन्त मत में ज्ञान मार्ग या निर्गुण भक्ति का कथन है। भारत में चौदहवीं शताब्दी तक भक्ति के सगुण निर्गुण दो रूप हो चुके थे। सगुण भक्ति राम और कृष्ण भक्ति के रूप में पनपी तथा निर्गुण भक्ति के ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी दो रूप हो गये। निर्गुण भक्ति के ज्ञानश्रयी शाखा के कवि सन्त कहलाये जैसे कबीरदास, रैदास, गुरुनानक देव आदि। भैतिक रथ को खींचने के लिए जैसे दो अश्वों की आवश्यकता होती है वैसे ही जीवन रथ को खींचने के लिए मनचेतना और वाक् चेतना की आवश्यकता होती है।

प्राण शक्ति (चेतना) से यथा आकाश स्थित है उसी प्रकार सबसे बड़े प्राणी से लेकर चींटी तक सभी जीवित हैं। यह प्राण शक्ति मनुष्य के हृदय प्रदेश में रहती है –

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।[11]

इस चेतना के अभाव में यह सृष्टि हीन होती है–सोऽयमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धः, तद्यथामाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धः एवं सर्वाणि भूतानि आपिपीलिकाभ्यः प्राणेन विष्टब्धानीत्येवं विद्यात्।।[12]

प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है कि हे प्राण तू ही गर्भ में विचरने वाला और माता–पिता के अनुरूप सन्तान के रूप में जन्म लेने वाला है। तू ही अपानादि सब प्राणों के सहित सबके शरीर में स्थित हो जाता है–

प्रजापति चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे। तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठति।[13]

इसी उपनिषद् में पुनः कहा गया है यह सर्वश्रेष्ठ प्राण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है–आत्मनः एषो प्राणो जायते।[14] यह सर्वश्रेष्ठ प्राण अपने अंग स्वरूप अपान, व्यान, आदि दूसरे प्राणों को शरीर के पृथक्–पृथक् स्थानों पर पृथक्–पृथक् कार्यों के लिए नियुक्त करता है।

कठोपनिषद् में नचिकेता के विशेष आग्रह करने पर यम उसे अद्वैत तत्व का मार्मिक उपदेश देते हैं– नित्यों में नित्य, चेतनों में चेतन वह एक ब्रह्म सभी प्राणियों की आत्मा में निवास करता है। उसी चैतन्य ब्रह्म का दर्शन शान्ति का एकमात्र साधन है–

नित्यो नित्यानां चेतन चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।।[15]

माण्डूक्य उपनिषद् में ओ३म् की मार्मिक व्याख्या की गई है। ओ३म् में तीन तात्राएं होती हैं तथा चतुर्थ अंश अमात्र होती है। चैतन्य की तदनुरूप चार अवस्थाएं होती हैं– जागरित, स्वप्न, सुशुप्ति तथा चैतन्य की तुरीय दशा। इन्हीं का अधिपत्य धारण करने वाला आत्मा भी क्रमशः चार प्रकार का होता है– वैश्वानर, तैजस्, प्राज्ञ तथा प्रपंचोपशम रूपी शिव जिसमें अन्तिम चैतन्य का विशुद्ध रूप है। जो मनुष्य ओंकार और परब्रह्म परमात्मा अर्थात् नाम और नामी की एकता के रहस्य को समझकर तत्परता से साधन करता है वह निःसन्देह आत्मा से आत्मा में अर्थात् परात्पर परब्रह्म परमात्मा में लीन हो जाता है।[16]

ऐतरेय उपनिषद् में कहा गया है कि मनुष्य का शरीर ही (चैतन्य) पुरुष के लिए उपयुक्त आयतन है जिसके भिन्न–भिन्न अवयवों में देवताओं ने प्रवेश किया तदनन्तर परमात्मा (चैतन्य पुरुष) उसके मूर्धसीमा को विदीर्ण कर प्रवेश करता है तथा जीव भाव को प्राप्त कर भूतों के साथ तादात्म्य रखता है। तदनन्तर गुरु कृपा से बोध के अनन्तर सर्वव्यापक शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार होता है–

स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत।
सैषा विदृतिर्नाम द्वास्तदेतन्नान्दनम्।
तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्नाः..... ।[17]

महर्षि याज्ञवल्क्य ने इसी आत्मा के साक्षात्कार कों मोक्ष का स्वरूप कहा है–

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यायासितव्य।
आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेन सर्वं विज्ञातं भवति।[18]

कौशीतकि उपनिषद् में कहा गया है कि प्राण प्रथमतः जीवन का तत्व है, तदनन्तर चैतन्य का तत्व है। अन्त में यही प्राण आत्मा का प्रतीक सिद्ध किया गया है जो जगत् के समस्त पदार्थों का कारण है तथा प्राणिजन उसके हाथ में यन्त्रवत् घूमते रहते हैं। इस विषय में कुछ अन्य उपनिषद् वाक्य निम्नवत् हैं जैसे जिसका नेत्रों

द्वारा दर्शन तथा हाथों द्वारा ग्रहण नहीं हो सकता जिसका कोई रूप रंग नहीं है, जो आंख, कान, हाथ, पैर आदि से रहित है, उस नित्य, विभु, सर्वगत, अत्यन्त सूक्ष्म एवं अविनाशी चैतन्य ब्रह्म तत्व को धीर पुरुष ही सब ओर देखते हैं।[19] जिस प्रकार जलती हुई आग से उसी के समान रूप वाली सहस्रों चिंगारियां निकलती हैं, उसी प्रकार उस अविनाशी चैतन्य ब्रह्म से नाना प्रकार के जीव उत्पन्न होते हैं।[20] छान्दोग्योपनिषद् का कथन है कि यह सारी प्रजा सत् रूपी कारण से उत्पन्न हुई है, सत् में ही निवास करती है और सम् में ही प्रतिष्ठित होती है।

कठोपनिषद् में स्पष्टतः कहा गया है कि सम्पूर्ण वेद जिस पद का बारम्बार प्रतिपादन करते हैं वह ओम् है। इस वाक्य द्वारा समस्त श्रुतियों की एकार्थता का स्पष्टतः प्रतिपादन किया गया है–

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।[21]

मनु ने आत्म चेतना को श्रेष्ठ की है–सर्वेशामपि चैतेशामात्मज्ञानं परं स्मृतम्।[22] सभी शुभ कर्मों जैसे वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, अहिसां आदि सभी कर्मे में आत्म चेतना श्रेष्ठ है।

यास्क ने निरुक्त दैवत–काण्ड में देवता का स्वरूप विवेचन में कहा है कि इस जगत के मूल में एक ही महत्वशालिनी (चेतन) शक्ति विद्यमान है जो निरतिशय ऐश्वर्यशालिनी होने से ईश्वर है। वह एक अद्वितीय है। उसी एक की बहुत रूपों में स्तुति की जाती है–

महाभाग्यात् देवताया एक एव आत्मा बहुधास्तूयते।
एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यंगानि भवन्ति।[23]

इस प्रकार निरुक्त के उपर्युक्त कथनानुसार देवतागण एक ही चैतन्य शक्ति के विविध रूप हैं।

पारमार्थिक दृष्टि से चेतन तत्व ही स्फोट है। स्फोट शब्द है, ध्वनि उस शब्द का गुण है। यहाँ स्फोट का स्पष्टीकरण भी आवश्यक है। आचार्य दण्डी के अनुसार शब्द नामक ज्योति से यह सम्पूर्ण संसार देदीप्यमान है–

इदमन्ध तमः कृत्स्नं जायते भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरा संसारं न दीप्यते।।[24]

शब्द दो प्रकार का है– नित्य तथा अनित्य। अनित्य शब्द से वैयाकरणों का तात्पर्य उच्चारण जन्य और श्रोत्रग्राह्य ध्वनि अथवा नाद से है तथा नित्य शब्द से उनका तात्पर्य मूल तत्व शब्द से है जो न तो उच्चारण जन्य है न श्रोतग्राह्य। यही नित्य है। ध्वनि अनित्य है। स्फुटति अर्थः यस्मात् सः स्फोटः अर्थात् जिससे अर्थ की प्रतीति हो उसे स्फोट कहते हैं। इस प्रकार स्फोट की अभिव्यक्ति शब्द से होती है तथा ध्वनति स्फोटं व्यक्ति इति ध्वनिः इस व्युत्पत्ति के अनुसार स्फोट के अभिव्यंजक शब्दों के लिए ध्वनिपद का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार वैयाकरणों ने जिसे स्फोट कहा वैज्ञानिकों ने उसे बिग–बैंग कहा। भर्तृहरि के अनुसार स्फोट रूप शब्द ही एकमात्र सत्यभूत पदार्थ है। तथ यह जगत स्फोट का विवर्तमात्र है। यही चैतन्य शक्ति अविधा, लक्षणा, और व्यंजना के द्वारा उत्पन्न तद्–तद् अर्थ का बोध कराती है।

भर्तृहरि ने भी नीतिशतक में स्वानुभूति परक चेतना को भगवान् के अस्तित्व का एकमात्र श्रेष्ठ प्रमाण माना है–

स्वानुभूत्यमेकमानाय नमः शान्ताय तेजसे।[25]

वस्तुतः चेतना मानव मस्तिष्क में प्रवाहमान वह रूाक्ति है जा मनुष्य को निरन्तर चैतन्यता प्रदान करती

है। चेतना की गति नामक विशेषता के कारण उसमें परिवर्तनशीलता दिखाई देती हे। यह चेतना समष्टिगत तथा व्यष्टिगत उभय रूप वाली है। यह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शाब्दिक आदि अनेक रूपों प्रदर्शित होती हुई भी एक ही है। अध्यात्म, दर्शन, साहित्य, व्यवहार तथा आत्मबोध के क्षेत्र में यही चेतना है।

सन्दर्भ ग्रन्था :-

1. Dictionary English and Sanskrit-S/R M. Monier Williams.
2. नालन्दा विशाल शब्द सागर– पृ0 388 (1954)
3. Wikipedia.
4. हिन्दी साहित्य कोश 1 सं0 धीरेन्द्र वर्मा, पृ0 316,
5. मानक हिन्दी कोश : खण्ड दूसरा रामचन्द्र वर्मा, पृ0 274
6. रमेश कुन्तल, मेघ (आलोचना) जनवरी मार्च, 1976
7. श्रीमद्भागवत महापुराणम् महात्म्य 1/1
8. प्रेम विलास शब्द 15, पृ0 19
9. प्रेमप्रचारक 10 अक्टूबर 2005, पृ0 02
10. श्रीमद्भागवत महापुराणम्, 7/5/23
11. श्रीमद्भगवद् गीता 18/61
12. ऐतरेय आरण्यक 2/1/6
13. प्रश्नोपनिषद् 2/7
14. प्रश्नोपनिषद 3/3,4
15. कठोपनिषद् 2/2/13
16. माण्डूक्योपनिषद् 12
17. ऐतरेयोपनिषद् 3/12
18. याज्ञवल्क्य स्मृति 5/68
19. कौशितकि उपनिषद्, पृ0 53
20. मुण्डकोपनिषद्, 2/1/1
21. कठोपनिषद् 1/2/15
22. मनुस्मृति 12/85 पू0
23. निरुक्त 7/4/8, 9
24. काव्यादर्श 1/09
25. नीतिशतकम् 1/1

M. 9808486385

Email- gauravgautam12187@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 64-67

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आचार्य दण्डी से परवर्ती आचार्यों की अलङ्कार धारणा

डॉ. जया कुमारी

गाँव फग्यहरा, डाकघर वृखमणी, तहसील बल्ह, जिला मण्डी, हि. प्र.–175027

आचार्य उद्भट :–

दण्डी के पश्चात् अलङ्कार विवेचन के क्षेत्र में उद्भट का नाम सबसे पहले आता है। उद्भट का काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'काव्यालंकार सार संग्रह' उपलब्ध होता है। इस ग्रन्थ में इकतालीस अलङ्कारों का निरूपण किया है, जिन्हें छरू वर्गों में बांटा गया है। ध्वनिवादि आचार्यों के रस, वस्तु एवं अलङ्कार इन त्रिविध व्यङ्गयों को उद्भट ने अलङ्कार का अंग सिद्ध किया है। उनके अनुसार गुण एवं अलङ्कार समान रूप से ही काव्य के सौन्दर्यवर्धक होते हैं।

आचार्य वामन :–

आचार्य वामन रीति सम्प्रदाय के कवि हैं, परन्तु उनका काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' है। आचार्य वामन की अलङ्कार विषयक धारणा– (1) सौन्दर्यमलंकारः, (2) काव्यशोभायाः कत्तारो धर्माः गुणाः, (3) तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः। इनके मत में सौन्दर्य ही अलङ्कार है। यद्यपि काव्य की शोभा को करने वाला धर्म गुण है तथापि इसकी कान्ति में अतिशय का हेतु अलङ्कार ही करते हैं। वामनानुसार विभूषित करने वाले तत्व उपमा प्रभृति अलङ्कार ही हैं–

अलंकृतिः अलंकार करणव्युत्पत्या पुनः। अलंकारशब्दोऽयमुपगादिषु वर्तते।

रूद्रट :–

रुद्रट भारतीय साहित्य शास्त्र के अत्यधिक महत्त्वशाली आचार्य हैं। इनका ग्रन्थ 'काव्यालङ्कार' है। रुद्रट ने अलङ्कारों को सबसे अधिक महत्त्व दिया है। रुद्रट ने अलङ्कारों को काव्य का अपरिहार्य तत्त्व माना है। अलङ्कार की रचना के लिए चारूत्व को आवश्यक बताते हुए कहा है कि कवि उसी शब्द की रचना करे जो काव्य को सुन्दर बना सके।

आचार्य कुन्तक :–

आचार्य कुन्तक का काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'वक्रोक्तिजीवितम्' है। इनके अनुसार विच्छिति विशेष का अभिधान ही अलङ्कार है अर्थात् अलङ्कार काव्य का शोभाधायक तत्त्व हो सकता है, यदि अलङ्कार काव्य में विचित्रता उत्पन्न करें।

भोज :–

धारा नरेश भोजराज इतिहास प्रसिद्ध दानी एवं कवियों के उदार आश्रयदाता थे। भोज ने काव्यशास्त्र के

दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। भोजदेव ने 'श्रृंगार–प्रकाश' के दशम प्रकाश में कहा है कि काव्य शरीर के चारूत्वरूप उत्कर्ष की सिद्धि के लिए अलङ्कार उपकारक है तथा उसके बाह्य, आभ्यन्तर एवं बाह्याभ्यन्तर ऐसे तीन भेद किए हैं। इस दृष्टि से भी 'अलङ्कार' हारादिवत् ही सिद्ध होते हैं।

आचार्य मम्मट :–

आचार्य मम्मट का काव्यप्रकाश संस्कृत साहित्यशास्त्र का गौरवपूर्ण ग्रन्थ है। काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट के अनुसार हारादि आभूषणों के समान अलङ्कार और उनमें रस का उपकार ठीक उसी प्रकार करते हैं, जिस प्रकार धारण किए हुए आभूषणों द्वारा प्रकारान्तर से आत्मा का उत्कर्ष होता है। जो रस के उपकारक हों और इसमें नियम से न रहें तथा अनियम से रस के उपकारक हों, वे अलङ्कार कहलाते हैं।

आचार्य रूय्यक :–

आचार्य रुय्यक ध्वनिवादी आचार्य हैं। इनका 'अलङ्कार सर्वस्वम्' नामक ग्रन्थ अलङ्कार की अत्यन्त प्रौढ़ रचना है। रुय्यक ने प्राचीन सभी अलङ्कारिकों के मतों का विवेचन तो किया है, किन्तु वे अलङ्कारों की परिभाषा पूर्वोक्त ही मानते हैं। रूय्यक के अनुसार गुण संघटना पर आश्रित होने के कारण काव्य संघटन के धर्म हैं और अलङ्कार शब्दार्थ के धर्म हैं।

शोभाकर मित्र :–

इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अलङ्कार–रत्नाकर' है। शोभाकर का 'अलङ्कार रत्नाकर' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं प्रौढ़ है। 'अलङ्कार रत्नाकर' में कतिपय अलङ्कारों के सम्बन्ध में परम्परा विरोधी विचार व्यक्त किया गया है। इन्होंने अलड़कारों की संख्या 125 मानी है, जिसमें 6 शब्दालङ्कार और शेष अर्थालङ्कार हैं।

हेमचन्द्र :–

प्रसिद्ध वैयाकरणकार हेमचन्द्र का काव्यानुशासन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है। इसकी रचना सूत्र शैली में हुई है। इन्होंने इस पर वृत्ति एवं टीका लिखी है। वृत्ति को अलङ्कार चूड़ामणि एवं टीका को 'विवेक' कहा है। यह ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभक्त है। अलङ्कारों का वर्णन पञ्चम एवं षष्ठ अध्यायों में हुआ है। हेमचन्द्र ने शब्द और अर्थ सहित काव्य को अलङ्कार कहा है।

वाग्भट :–

ये प्रसिद्ध जैन आचार्य हैं। इनकी एकमात्र रचना 'वाग्भटालङ्कार' है। 'वाग्भटालङ्कार' में अलङ्कारों को लक्षित करते हुए कहा है कि दोषों से रहित और गुणों से युक्त होने पर भी जिनसे रहित वचन अनलंकृत स्त्री के रूप में समान शोभा को प्राप्त नहीं होता, उस अलङ्कार–समूह का वर्णन करते हैं।

जयदेव :–

जयदेव का 'चन्द्रालोक' अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है। इनके अनुसार उचित प्रकार से धारण किए हुए हार, जिस प्रकार शारीरिक शोभा के वर्धक होते हैं, उसी प्रकार काव्य–शास्त्रियों की कल्पना से प्रभूत तथा चमत्कारोत्पादक शब्दार्थ का सुन्दर सन्निवेश काव्यशरीर को विभूषित करता हुआ अलङ्कार कहलाता है। अलङ्कार हारादि की तरह सौन्दर्य उत्पन्न करते हैं।

विद्याधर :–

इन्होंने 'एकावली' नामक काव्य–शास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की है। 'एकावली' की रचना आठ उन्मेषो में हुई

है और इसमें काव्य के सभी अगों का विवेचन हुआ है। यह ग्रन्थ काव्यप्रकाश तथा अलङ्कार –सर्वस्वम् पर आश्रित है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने एकावलीकार के मत को उद्धृत करते हुए कहा है कि इनके अनुसार औपम्य, विरोध, तर्क आदि को अलङ्कार का मूल विभेदक मानकर इस की बड़ी सुन्दर समीक्षा की है।

विद्यानाथ :-

विद्याधर के समकालिक आचार्य विद्यानाथ काकतीय नरेश प्रताप रुद्रदेव के आश्रम में रहते थे। इन्हीं के नाम पर विद्यानाथ ने अपने लक्षण ग्रन्थ का नाम 'प्रतारुद्रयशोभूषण' रखा था। इन्होंने हारादि के समान अनुप्रास और उपमादि को ही अलङ्कार माना है।

अप्पय दीक्षित :-

अप्पय दीक्षित के अलङ्कार –शास्त्रीय दो ग्रन्थ हैं– चित्र मीमांसा एवं कुवलयानन्द। इनके अनुसार अलङ्कार चमत्कृति के आधायक हैं। इसलिए शब्दचित्र, अर्थचित्र और शब्दार्थ चित्र की रचना में शब्दालङ्कार अर्थालङ्कार प्रयुक्त होते हैं। अप्पय दीक्षित शब्दालङ्कारों को उन पर आधारित शब्दचित्रों को नीरस और हेय समझते थे।

आचार्य विश्वनाथ :-

विश्वनाथ के अनुसार शोभा को अतिशयित करने वाले, स्वभाव आदि के उपकारक, जो शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं, ये बाजूबन्द की तरह अलङ्कार अर्थात् सौन्दर्य वर्धक तथा रसभाव इत्यादि का उपकार करने वाले जो शब्दार्थ के अचल धर्म हैं, वे अलङ्कार कहे जाते हैं। मनुष्य अपनी सौन्दर्य वृद्धि के लिए अङ्गदादि धारण करते हैं, वैसे ही उपमादि काव्यगत अलङ्कार काव्य के सौन्दर्यवर्धक होते हैं।

पण्डितराज जगन्नाथ :-

पण्डितराज जगन्नाथ संस्कृत काव्यशास्त्र के उद्भट आचार्य हैं। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रसगङ्गाधर' है। इनकी अलङ्कार धारणा यह है कि इन्होंने अलङ्कारों का व्यङ्ग्यरूपी काव्यात्मा में रमणीयता का प्रयोजन किया है।

विश्वेश्वर पण्डित :-

अलङ्कार शास्त्र की अन्तिम प्रौढ़ आचार्य विश्वेश्वर पण्डित हैं। इनका ग्रन्थ 'अलङ्कार कौस्तुभ' है। पण्डितराज की शैली का अनुसरण कर इन्होंने अलङ्कारों का प्रमाणिक विवेचन किया है। डॉ० हीरा राजवंशसहाय ने विश्वेश्वर पण्डित के मन को प्रकट करते हुए कहा है कि इनके अनुसार अलङ्कार वह तत्त्व है, जो काव्य में शोभा को बढ़ाता है।

अतः आलङ्कारिकों के अनुसार अलङ्कार काव्य के शोभावर्धक धर्म हैं। अलङ्कार रहित रचना उष्णताहीन पावक की तरह व्यर्थ होती है तथा अलङ्कार रहित वाणी विधवा के तुल्य होती है। विभिन्न आचार्यों की अलङ्कार– विषयक चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि अलङ्कार सम्प्रदाय भामह, दण्डी तथा उद्भट आदि ने जहाँ अलङ्कार को काव्य का आवश्यक तत्त्व माना है, वहाँ रसवादी तथा ध्वनि रसवादी आचार्य मम्मटादि ने काव्य में अलङ्कार को गौण स्थान देकर रस को ही महत्त्व दिया है।

सन्दर्भ –ग्रन्थ– सूची :–

1. अलङ्कारानुशीलन, 'हीरा' राजवंश सहाय, चौखम्बा विद्याभवन, पो. बा. न. 1069, वाराणसी–221001, सप्तम संस्करण, 1988
2. अलङ्कार सर्वस्वम्, राजानक रुय्यक, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
3. काव्यानुशासनम्, हेमचंद्र, मेहरचन्द लछमनदास, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
4. काव्यप्रकाश, मम्मट, सम्पादक डॉ. श्री निवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, पञ्चम संस्करण, 1977
5. काव्यालङ्कार, भामह, पटना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 1962
6. काव्यालङ्कार, रुद्रट, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, वि० सं० 2023
7. काव्यालङ्कारसारसंग्रह, उद्भट, प्रयागः हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संवत् 1888
8. काव्यालङ्कारसूत्राणि, वामन, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, प्रथम संस्करण, वि. सं. 2028
9. चन्द्रालोक, जयदेव, बनारसीदास पो. बो. 75, नेपाली खपरा वाराणसी।
10. चित्रमीमांसा, अप्पय दीक्षित, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी–1, प्रथम संस्करण 1971
11. प्रतापरुद्रीयम्, विद्यानाथ, दि संस्कृत एजूकेशन सोसायटी, मद्रास, 1970
12. रसगङ्गाधर, पण्डितराज जगन्नाथ, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली–7, सप्तम संस्करण
13. वाग्भटालङ्कार, वाग्भट्ट, विद्यासागरीय टीका, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर भारत, प्रथम संस्करण, 1992
14. संस्कृत साहित्य में शब्दालङ्कार, डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी, केंद्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1962
15. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, नवम् संस्करण, 1977

165. श्रृंगार प्रकाश, भोज, मैसूर कारेनेशन मुद्राणालय, 1963

मोबाइल 9418293916

ईमेल – jaya.jamwal.jj@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 68-79

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महाभारत कालीन संस्कृति

"शान्तिपर्व में वर्णित भीष्म युधिष्ठिर संवाद में लौकिक ज्ञान"

प्रो० अर्चना गिरि

संस्कृत विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली, पिन–243005

भारतीय संस्कृति को सनातन संस्कृति माना गया है। युग परिवर्तन अपने साथ उनकी व्याख्या को अवश्य ही बदल देता है। आज बदलते हुये युग में भी भारतीय संस्कृति के मूल सिद्धान्त वही हैं किन्तु वर्तमान काल में परिस्थितिवश उनकी प्रासंगिकता बदल जाती है। संस्कृति किसे कहते हैं यह जानना आवश्यक है। प्रकृति तथा प्रत्यय के आधार पर संस्कृति और संस्कार का एक ही अर्थ है। किन्तु संस्कृति का प्रयोग आधुनिक काल में उस अर्थ में नहीं होता है। संस्कृति का अर्थ है जिसमें कोई देश, जाति या समाज अपना उद्देश्य एवं आदर्श निश्चित करके उसे प्राप्त करने के लिये निर्धारित करता एवं अपनाता है। किसी न किसी आदर्श को स्थापित करके ही कोई देश अपनी संस्कृति को सुरक्षित कर सकता है। व्यक्ति या समाज के परम्परागत आचरण या उनका प्रचलन तो संस्कृति के बाह्य रूप हैं इनमें प्राण प्रतिष्ठा करने वाला तत्व ही संस्कृति है। संस्कृति का प्रयोजन मानव जीवन के दोनों पक्षों आध्यात्मिक और लौकिक दोनों को समाहित करता है। संस्कृति जीवन के सभी पक्षों को आलोकित, संयत एवं परिष्कृत करने वाली है। एक ओर जहाँ सभ्य आचरण का जन्म होता है, वहीं दूसरी ओर सभ्यता का भी जन्म होता है। मनुष्य में अनेक सद्गुणों का जन्म संस्कृति से होता है। हमारी बोलचाल की भाषा संस्कारित होती है। खान–पान और रहन–सहन आवास की व्यवस्था सुदृढ़ होती है। अतीत का गौरव भी बना रहता है। भारतीय संस्कृति के आधार रूप में आध्यात्मिक और लौकिक या निवृत्ति और प्रवृत्ति दो पक्ष सामने आये हैं। लौकिक पक्ष का लक्ष्य अभ्युदय और आध्यात्मिक पक्ष का निःश्रेयस है। जहाँ से इसका सृजन होता है, उसे धर्म कहा जाता है। धर्म और संस्कृति यथार्थतः एक ही है। धर्म का अर्थ है, जिसे धारण किया जाये। इसके धारण करने का प्रयोजन भी आत्मकल्याण या लोककल्याण है, संस्कृति का भी यही प्रयोजन है। ऋषियों मुनियों की यही परिकल्पना सर्वे भवन्तु सुखिनः को अभिव्यक्त करती है।

भारतीय संस्कृति का दूसरा मूल तत्त्व धर्म है भारतीय आचार्यों ने मनुष्य के लिये पुरूषार्थ का निर्देश करते हुये चतुर्वर्ग को माना है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार तत्त्वों की गणना की जाती है। मोक्ष का सम्बन्ध बाह्य जीवन से होने से लौकिक जीवन में तीन की ही प्रधानता होने से त्रिवर्ग की ही चर्चा की जाती है। धर्म को त्रिवर्ग का सार बताया गया है। इसका मुख्य कारण है सब में धर्म की प्रधानता का होना। भारतीय मनीषियों ने धर्म से सम्बन्धित काम को ही श्रेष्ठ बताया है। कर्म और भाग्य को भी यहाँ प्रमुखता से बताया जाता है।

हमारे शोध पत्र का शीर्षक है 'महाभारत कालीन संस्कृति' इसमें त्रिवर्ग की ही चर्चा ज्ञान रूप में हमारी

सांस्कृतिक विरासत है। इसी बात को विस्तार से बताया जायेगा। विश्व साहित्य में सबसे बड़ा ग्रन्थ महाभारत ही है, जिसमें एक लाख से कुछ अधिक श्लोक हैं। यह भारत के सांस्कृतिक विषयों की एक विस्तृत आचार संहिता है। कहा जाता है जो महाभारत में नहीं है वह कहीं नहीं है।

धर्मे चार्थो च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।। 1/62/53

महाभारत वेदव्यास जी की रचना है। वे पराशर ऋषि के पुत्र थे और उनकी माता का नाम सत्यवती था। यमुनाद्वीप में जन्म के कारण द्वैपायन भी कहते हैं। कृष्ण वर्ण का होने के कारण कृष्ण मुनि तथा वैदिक मन्त्रों को याज्ञिक उपयोग के लिये चार वेदों में विभक्त करने के कारण वेदव्यास भी कहा गया है। महाभारत में 18 पर्व हैं इनमें शान्तिपर्व बहुत बड़ा है। ये बाद में जोड़ा गया प्रतीत होता है। धार्मिक एवं दार्शनिक प्रसंग सर्वाधिक इसी में है। राजधर्म, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, दण्डनीति, आपदधर्म आदि इसमें विस्तार से विवेचित हैं मोक्षधर्म के अन्तर्गत सृष्टि, जीव, आत्मा, कर्म, ज्ञान, पुरूषार्थ आदि आध्यात्मिक विषयों का यहाँ प्रतिपादन है। अनेक प्रकार के गीता ग्रन्थों का प्रतिपादन किया गया है। महाभारत का सांस्कृतिक पक्ष अनेक बिन्दुओं पर आश्रित है। इसके पात्रों की विशिष्टताओं का प्रयोग हमारे दैनिक वार्तालाप में होता है। इसकी कथा जगत त्रय के सभी पक्षों का स्पर्श करती है। महाभारत कालीन संस्कृति की मुख्य झाँकी महाभारत का शान्ति पर्व है, उसमें भी अनेक प्रकार का गीता ज्ञान उसका आधार है।

महाभारत कालीन संस्कृति के अन्तर्गत भारतीय संस्कृति में वर्णित पुरूषार्थ त्रय तथा शोक, त्याग, तृष्णा, विरक्ति एवं मुमुक्षु पुरूष की कर्त्तव्य इच्छा तथा परब्रह्म के स्वरूप व कार्य को भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को समझाया है। भीष्म जानते थे ये साक्षात् धर्म हैं परन्तु बिना गुरू ज्ञान और सही कर्त्तव्य की इच्छा किसी भी मनुष्य को पूर्ण नहीं बना सकती है। युधिष्ठिर को मोक्ष मिले और उन्हें सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिले इसलिये शान्तिपर्व में अनेक संवाद कथा के माध्यम से दिये गये हैं, जिन्हें गीता के नाम से जाना जाता है। गीता का अर्थ है ज्ञान देने वाला और ज्ञान लेने वाला। दोनों शुद्ध बुद्धि और सात्विक प्रवृत्ति के हों क्योंकि उनके ज्ञान का प्रभाव समस्त समाज और संसार पर पड़ता है। महाभारत के शान्तिपर्व में षड्ज गीता आती है। इसमें तीनों पर विचार किया गया है। धर्मराज युधिष्ठिर ने पूर्वपक्ष के रूप में अपने चारों भाइयों तथा विदुर जी से उनका मत जानकर उत्तरपक्ष के रूप में अपना मत बताया है। इस गीता में जीवन जीने के सभी पक्षों पर विचार किया गया है। छह (06) लोगों के विचार होने से इसे 'षड्ज गीता' कहते हैं। इसमें भी विचार की शक्ति भीष्म ने ही युधिष्ठिर को दी और चुप हो गये तब युधिष्ठिर का ये धर्म बन गया कि इसका सही विश्लेषण किया जाये। तभी उन्होंने घर जाकर विदुर जी और चारों भाइयों से प्रश्न किया कि–

''लोगों की प्रवृत्ति प्रायः धर्म, अर्थ और काम की ओर होती है। इन तीनों में कौन सबसे श्रेष्ठ, कौन मध्यम, कौन लघु है? तीनों पर विजय पाने के लिये किस पर मन लगाना चाहिये? पूरी आस्था से इसका आप लोग उत्तर दें।''[1]

शान्तिपर्व में महात्मा विदुर को अर्थ की गति और तत्त्व को जानने वाले कहा गया है। उन्होंने धर्म का स्मरण करके कहा– राजन! आत्मा को सम्पत्तिवान बनाने के लिये उसमें कुछ गुणों का होना आवश्यक है जैसे–शास्त्रों का अनुशीलन, तपस्या, त्याग, श्रद्धा, यज्ञकर्म, क्षमा, भावशुद्धि, दया, सत्य और संयम। युधिष्ठिर तुम

इनको प्राप्त करो। क्यों धर्म और अर्थ की जड़ ये ही हैं। ''मेरे मत में धर्म ही परम पद है। उसी धर्म को ऋषियों ने अपनाकर संसार समुद्र पार किया। धर्म लोक का आधार व देवताओं की उत्पत्ति का कारण है। धर्म में ही अर्थ की स्थिति है। अतः अर्थ मध्यम और काम लघु है। अतः मन को वश में करके धर्म को अपना ध्येय बनाना चाहिये और सम्पूर्ण प्राणियों के साथ वैसा ही वर्त्ताव करना चाहिये जैसा हम अपने लिये चाहते हैं।''[2] यहाँ विदुर जी का स्पष्ट संकेत है कि धर्म ही संसार की रक्षा करता है। ज्ञान सुख देता है। अर्थ सुख देता है। युधिष्ठिर ने अर्जुन को आदेश दिया कि वह उत्तर दे। ''अर्जुन ने जीविका के साधन भूत कर्म को ही बड़ा बताया उसी से अर्थ की प्राप्ति भी बताई। उसी से कर्म की मर्यादा का पालन होता है। अर्थ के बिना धर्म और काम भी सिद्ध नहीं होते हैं। धनवान पुरूष धन से धर्म का पालन कर सकता है। सफल कामनाओं को सिद्ध कर सकता है। श्रुति कहती है कि धर्म और काम अर्थ के ही दो अवयव हैं। अर्थ की सिद्धि से उन दोनों की भी सिद्धि हो जायेगी। उत्तम जाति के मनुष्य ब्रह्मा की भाँति धनवान पुरूष को ही पूजते हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी को भी अर्थ की अभिलाषा होती है। संग्रह से रहित अपने आश्रमों के धर्मों का अनुष्ठान करने वाले को भी धन की इच्छा होती है। अतः अर्थ की प्रधानता को न जानना तमोमय अज्ञान है। अर्थ की प्रधानता का ज्ञान प्रकाशमय है।''[3] इस प्रकार अर्जुन ने अर्थ को धरती पर महत्वपूर्ण माना है। माद्री कुमारों नकुल और सहदेव ने भी धन को ही प्रमुख माना। धन से सभी कुछ प्राप्त हो सकता है। ''जो धन धर्म से युक्त हो और धर्म धन से सम्पन्न हो वह निश्चित रूप से आप के लिये अमृत के समान होगा यह हम दोनों का मत है। निर्धन मनुष्य की कामना पूर्ण नहीं होती है।

अतः सबसे पहले मन को संयम में रखकर धर्म को अपनायें फिर धन का साधन करें। इसके बाद दोनों की अनुकूलता रखते हुये काम का सेवन करे। यही है त्रिवर्ग का संग्रह।''[4] भीमसेन ने भी कामना को महत्त्व दिया। बिना कामना कुछ नहीं हो सकता है। बिना कामना के कुछ भी पाया नहीं जा सकता है। ''ऋषि भी कामना से ही तपस्या करते हैं। कामना से ही वेद और उपनिषदों का स्वाध्याय करते हैं सभी लोग कामना से ही कर्मों में लगे रहते हैं। कामना के विविध रूप हैं। अतः काम ही त्रिवर्ग का सार है। धर्म और अर्थ भी इसी में स्थित है जैसे दही का सार मख्खन है। उसी प्रकार धर्म और अर्थ का सार काम है। काम धर्म और अर्थ का कारण है। अतः वह धर्म और अर्थ रूप है। बिना कामना के कोई ब्राह्मण अच्छा भोजन नहीं करता न ही कोई ब्राह्मणों को दान देता है। जगत के प्राणियों की नाना चेष्टा बिना कामना के नहीं होती है। अतः त्रिवर्ग में काम का ही प्रथम एवं प्रधान स्थान देखा गया है।''[5] यहाँ भीमसेन के कहने का तात्पर्य है कि धर्म, अर्थ और काम का एक साथ ही सेवन करना चाहिये जो इनमें से एक का ही भक्त है। वह अधम है, जो दो के सेवन में निपुण है वह मध्यम् है। जो त्रिवर्ग में समान रूप से अनुरक्त है वह मनुष्य उत्तम है।

युधिष्ठिर को अब अपना मत देना था। उन्होंने कहा कि आप सभी प्रमाणों के ज्ञान से भरे पड़े हैं। अब मेरे विचार सुनें–

''जो पाप में न लगा हो, न पुण्य में लगा हो, त्रिवर्ग में भी उपार्जन न करे। वह सब प्रकार के दोषों से रहित मनुष्य सुख और दुख देने वाली सिद्धियों से मुक्त हो जाते हैं। उस समय मिट्टी के ढेले और सोने में कोई अन्तर नहीं देखते हैं।''[6] युधिष्ठिर ने बताया जो लोग सांसारिक दुःखों से पीड़ित हों मुक्ति की कामना या प्रशंसा करते हैं। उन जैसे हम लोग उस मोक्ष को जानते ही नहीं। ब्रह्मा जी कहते हैं कि जिसके मन में आसक्ति है उसे कभी मुक्ति नहीं होती मुमुक्षु पुरूष को किसी का प्रिय अथवा अप्रिय नहीं करना चाहिये। विधाता ही प्रबल

है। वही सभी प्राणियों को कार्यों में लगता है। मनुष्य कर्म द्वारा अप्राप्य अर्थ नहीं प्राप्त कर सकता है। जो होनी है वही होती है। मनुष्य त्रिवर्ग से रहित होने पर भी आवश्यक पदार्थ को प्राप्त कर लेता है। अतः मोक्ष प्राप्ति का गूढ़ उपाय (ज्ञान ही) जगत का वास्तविक कल्याण करने वाला है। षड्ज गीता का सम्पूर्ण संवाद वैशमपायन जी ने जनमेजय को सुनाया है।

महाभारत की संस्कृति का दूसरा सोपान है पिंगला गीता। यह भी महाभारत के शान्तिपर्व में है। पितामह भीष्म और धर्मराज युधिष्ठिर के संवाद रूप में है। शोक का निवारण कैसे करे यह युधिष्ठिर ने पूछा है। आश्रमियों के उत्तम धर्म के बारे में पूछने पर पितामह कहते हैं कि– ''धर्म के बहुत से द्वार हैं। संसार में ऐसी कोई क्रिया नहीं है जिसका कोई फल न हो। हे भरतश्रेष्ठ! जो–जो पुरूष जिस–जिस विषयों में पूर्ण निश्चय को पहुँच जाता है जिसके द्वारा उसे अभीष्ट सिद्धि का पूर्ण विश्वास हो जाता है। उसी को वह कर्त्तव्य समझता है। मनुष्य जैसे–जैसे संसार की वस्तुओं को सारहीन समझता है वैसे–वैसे उसका वैराग्य होता जाता है।''[7] प्राप्त शोक का निवारण कैसे करें– ऐसा युधिष्ठिर ने पूछा। ''भीष्म ने कहा कि ऐसी स्थिति में शम, दम आदि साधनों का अनुष्ठान करें। ऐसी स्थिति में भीष्म ने ब्राह्मण और सेनजित् का दृष्टान्त दिया कि राजा सेनजित् पुत्र की मृत्यु के पश्चात् शोक की आग में जल रहे थे। मन विषाद में डूबा था। ब्राह्मण ने कहा– राजन तुम मूढ़ मनुष्य की भाँति क्यों मोहित हो रहे हो? शोक के योग्य तो तुम स्वयं ही हो। एक दिन दूसरे शोचनीय मनुष्य तुम्हारे लिये भी शोक करते हुये उसी गति को प्राप्त होंगे।''[8]

राजा सेनजित् का यही प्रश्न था कि आपके पास कौन सी बुद्धि, ज्ञान, तप, या समाधि है जो आपको विषाद नहीं है। मेरे मन में तो शाक ने डेरा डाल दिया है। इस संसार के सभी प्राणी आसक्त हो दुःख प्राप्त करते हैं। ब्राह्मण ने कहा मेरा किसी पर ममत्व नहीं है। लोक में प्राणियों का समागम जल में पड़े काष्ठ जैसा होता है। पुत्र, पौत्र आदि से भी लगाव ज्यादा नहीं रखना चाहिये क्योंकि एक दिन विछोह होना निश्चित है। तुम्हारा पुत्र भी किसी अज्ञात स्थिति से आया था और अज्ञात से चला गया। ''यहाँ संसार की स्थिति को ब्राह्मण ने बड़े सरल ढंग से समझाया मोह माया जो बुद्धि को भ्रष्ट कर देती है और तृष्णा को जन्म देती है। जो सभी दुःखों का मूल है। उसका विनाश ही सभी सुखों का मूल है। सुख और दुःख तो आते जाते रहते हैं। किसी भी प्राणी को सदा सुख और सदा दुःख नहीं प्राप्त होता है। यह शरीर ही सुख का आधार है और दुःख का भी आधार है। देहाभिमानी पुरूष शरीर से जो–जो कर्म करता है उसी के अनुसार वह सुख एवं दुःख रूप फल भोगता है।

संसार की मायात्मिका शक्ति के दुष्प्रभाव को बताते– बताते ब्राह्मण यही कहता है कि–जो मनुष्य उहापोह में भी शिक्षित एवं कुशल बुद्धि रखता है, अध्यात्म शास्त्र के श्रवण की इच्छा रखता है, किसी में दोष न देखने वाला मन को वश में रखने वाला और जितेन्द्रिय है, उस मनुष्य को शोक छू भी नहीं सकता है। विद्वान पुरूष को चाहिये कि इसी विचार का आश्रय लेकर मन को काम क्रोध आदि शत्रुओं से सुरक्षित रखते हुये उत्तम वर्त्ताव करे। जो उत्पत्ति और विनाश के तत्त्व को जानता है उसे शोक छू नहीं सकता है।''[9] यहाँ ब्राह्मण ने स्पष्ट कहा है कि किसी भी वस्तु से ममत्व नहीं करना चाहिये। कामनाओं का त्याग करना चाहिये। तृष्णाक्षय से होने वाले सुख की कोई बराबरी नहीं है। ''इसी वार्तालाप में उसने पिंगला वेश्या की कथा बताई। वह बहुत देर तक अपने प्रियतम के बताये संकेत स्थान पर बैठी रही जब वह नहीं आया तो अपार कष्ट में पड़कर शान्त रहकर विचार किया कि सच्चे प्रियतम (ईश्वर) चिरकाल से मेरे निकट ही रहते हैं मैं भी सदा से उनके साथ रहती आयी हूँ।

वे कभी उन्मत्त नहीं होते परन्तु मैं ऐसी मतवाली हो गई कि आज से पहले उन्हें पहचान न सकी। जिसमें एक ही खम्भा और नौ दरवाजे हैं। उसी शरीर रूपी घर को आज से मैं दूसरे के लिए बन्द कर दूँगी। यहाँ आने वाले उस सच्चे प्रियतम को जानकर भी कौन नारी हाड़ माँस के पुतले को अपना प्राणवल्लभ मानेगी।''(10)

इस प्रकार पिंगला मोहनिद्रा से जाग गई और कामनाओं का त्याग करके उत्तम ज्ञान से सम्पन्न हो गई यह कथा सुनकर राजा सेनजित् का चित्त स्थिर हो गया, शोक समाप्त हुआ और प्रसन्नता पूर्वक रहने लगे। त्याग का गुण भारतीय संस्कृति का सम्बल है। त्यागपूर्ण जीवन ही सफल माना गया है। त्याग को समझाने के लिये भीष्म पितामह ने शम्पाक नामक एक त्यागी ब्राह्मण के अनुभूत उपदेशों को उन्हीं के शब्दों में युधिष्ठिर को बताकर त्याग के लिये प्रेरित किया है। क्योंकि सभी मनुष्य सुख दुःख को भोगते हैं। त्याग के बिना न वास्तविक सुख मिलता है न परमात्मा इस लिये त्याग का उपदेश इस शम्पाक गीता में वर्णित है। शम्पाक अपनी गरीबी और दुष्टा स्त्री के भूख के कारण कष्ट भोग रहा था। संसार में मन को तप्त करने वाले अनेकों दुख हैं। ''कोई मनुष्य त्याग किये बिना सुख नहीं पाता, त्याग किये बिना परमात्मा को नहीं प्राप्त कर सकता है। त्याग किये बिना निर्भय सो नहीं सकता है। इसलिये तुम भी सब कुछ त्याग कर सुखी हो जाओ।''(11) इस प्रकार पितामह भीष्म ने त्याग का उदाहरण शम्पाक के दृष्टान्त से समझाकर युधिष्ठिर के चित्त को शान्त किया।

भारतीय संस्कृति के संबल मइिगीता सोपान में भीष्म युधिष्ठिर संवाद के अन्तर्गत कामना त्याग विशेषकर धन की तृष्णा का त्याग बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। उसके लिये पितामह ने मइि मुनि के विचारों से युधिष्ठिर का मन शान्त किया। युधिष्ठिर का प्रश्न यही था कि कितना भी प्रयास करें परन्तु धन की प्राप्ति न हो तो मनुष्य क्या करें? भीष्म ने कहा–

''भारत! सब में समता का भाव, व्यर्थ परिश्रम का अभाव, सत्यभाषण, संसार से वैराग्य और कर्मासक्ति का अभाव ये पाँचों जिस मनुष्य में होते हैं वह सुखी होता है। ज्ञानवृद्ध पुरूष इन्हीं पाँच वस्तुओं को शान्ति का कारण बताते हैं। इसी को स्वर्ग और इसी को धर्म कहते हैं यही परम सुख है।''(12)

मइि ऋषि की कथा धन और भोग से विरक्ति की कथा है। ऋषि ने धन की प्राप्ति के अनेक कामनायें की परन्तु हर बार उनका धन व्यर्थ हो जाता था। अन्त में शेष धन जो बचा था उससे बछड़े खरीदे। खेत में जोतने के लिये ले जाते समय दोनों बछड़े ऊँट को बीच में करके दौड़ पड़े। ऊँट ने तरह तरह से प्रताड़ित किया और बछड़े मर गये। तब ऋषि को समझ आया कि मनुष्य चतुराई से कुछ नहीं पाता है।। भाग्य में जितना होता है उतना ही पाता है। हठपूर्वक किया गया पुरूषार्थ कभी काम नहीं आता है। सफल पुरूषार्थ के पीछे भी भाग्य ही होता है। धनोपार्जन से विरक्त होने पर ही सुख प्राप्त होता। शुकदेव मुनि ने राजा जनक के राजमहल से विशाल वन की ओर जाते समय यही कहा था–

''जो मनुष्य अपनी समस्त कामनाओं को पा लेता है तथा जो इन सबका केवल त्याग कर देता है। इन दोनों के कार्यों में समस्त कामनाओं को प्राप्त करने की अपेक्षा त्याग ही श्रेष्ठ है।''(13)

धन आदि की प्रवृत्ति तृष्णा को ही बढ़ाती है। इसीलिये वैराग्यपूर्वक मन को शान्त करना चाहिये। धन की तृष्णा और चेष्टा का त्याग ही श्रेष्ठ जीवन पद्धति है। मइि ऋषि बार–बार अपने को ही दोषी मानते हैं कि वे मन के दास हो गये। अब जाग गये हैं। अब जान गये हैं कि मन फौलाद का बना होता है। इसलिए उसके टुकड़े नहीं होते हैं। कामनायें अच्छी होती हैं परन्तु उनसे कभी सुख का अनुभव नहीं हुआ। तेरा संकल्प ही जन्म

स्थान है। अतः संकल्प को नष्ट करके ही सुखी हो पाऊँगा। क्योंकि इसी से बार–बार धन प्राप्ति की इच्छा होती है। इसलिये काम को रोको और तृष्णा की वृद्धि को रोको जो विनाश का कारण है। पंचमहाभूतों का आश्रय लेकर रहने वाला यह शरीर स्नेह करने का पात्र नहीं है। अब मैं अपने शरीर में मन के अन्दर सम्पूर्ण भूतों को देखता हुआ वृद्धि को योग में एकाग्रचित्त को श्रवण–भषण आदि साधनों में और मन को परब्रह्म परमात्मा में लगाकर रोग–शोक से रहित एवं सुखी हो सम्पूर्ण लोकों में अनासक्त भाव से विचरूँगा, जिससे तू मुझे फिर इस प्रकार के दुःखों में न डाल सके। मन की चाल, तृष्णा, शोक और परिश्रम काम से ही संचालित होते हैं। काम ही प्रेरित करता है और जब धन का नाश हो जाता है तो वह बहुत बड़े दुख का कारण बन जाता है। दरिद्रता सबसे बड़ा पाप है। इसलिये तृष्णा का नाश करना चाहिये। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य और ममता से देहधारियों के सात शत्रु हैं इसमें कामरूप शत्रु सबसे प्रबल है। इसका नाश करके मैं अविनाशी ब्रह्मपुर में स्थित हो जाऊँगा। ''हे राजन्! इस प्रकार की बुद्धि का आश्रय लेकर मझि ऋषि कामनाओं का परित्याग करके परमानन्दस्वरूप परब्रह्म को प्राप्त हो गये। बछड़ों के नाश को निमित्त बनाकर मझि अमृतत्व को प्राप्त हो गये। उन्होंने काम की जड़ काट डाली।''(14)

आजगर गीता में एक विरक्त अवधूत द्वारा राजा प्रहलाद को दिये गये उपदेशों का वर्णन है। इसी को भीष्म ने युधिष्ठिर को सुनाया है। सुविधा और अभाव दोनों में सम रहना चाहिये। युधिष्ठिर ने यही प्रश्न किया कि किस तरह का आचार अपनाकर मनुष्य शोकरहित हो पृथ्वी पर विचरण कर सकता है। इस जगत में कौन सा कर्म करके वह उत्तम गति पा सकता है। इसी पर पितामह भीष्म ने प्रहलाद तथा अजगर वृत्ति से रहने वाले एक मुनि के संवाद रूप प्राचीन दृष्टान्त दिया। एक ब्राह्मण जो सुदृढ़चित्त है, दुःख शोक से रहित है तथा बुद्धि सम्मत है। उसे विचरते देख प्रहलाद ने प्रश्न किया– आप में इतने गुण हैं जैसे– स्वास्थ्य, शक्ति, मृदु, जितेन्द्रिय, कर्मारम्भ से दूर रहने वाले, दूसरे के दोषों पर दृष्टि न डालने वाले, सुन्दर और मधुर वचन बोलने वाले, निर्भीक, प्रतिभाशाली, मेधावी तथा तत्वज्ञ होकर भी आप बालकों के समान विचरण करते हैं। आप शोकरहित व नित्यतृप्त हैं। धर्म, अर्थ, काम के प्रति निश्चेष्ट हैं। आप इन्द्रियों के सम्पूर्ण विषयों की उपेक्षा करके साक्षी के समान मुक्त रूप से विचरते हैं। हे मुने! आप के पास कौन सी ऐसी बुद्धि, कैसा शास्त्रज्ञान अथवा कौन सी वृत्ति है। जिससे आप का जीवन ऐसा बन गया है? आप जिसे श्रेय मानते हैं उसे बतायें। तब मुनि ने प्रहलाद से कहा– पूर्वकृत कर्मानुसार बने हुये स्वभाव से ही प्राणियों की वर्तमान प्रवृत्तियाँ प्रकट हुई हैं। अतः समस्त प्रजा स्वभाव में ही तत्पर है, जिनका संयोग है, उनका पर्यवसान वियोग में ही होता है। संचय की समाप्ति विनाश में ही होती है।

अतः मैं कहीं भी मन को नहीं लगाता हूँ। सभी की मृत्यु निश्चित है। जो मिलता है वही खाता हूँ नहीं मिलता है नहीं खाता हूँ। मैं सदा पवित्रभाव से रहकर इस अजगरवृत्ति का अनुसरण करता हूँ। जैसा कि– ''मेरी बुद्धि अविचल है। मैं अपने धर्म से च्युत नहीं हुआ हूँ; मेरा सांसारिक व्यवहार परिमित हो गया है। मुझे उत्तम और अधम का ज्ञान है। मेरे हृदय से भय, राग, द्वेष, लोभ और मोह दूर हो गये हैं तथा पवित्र भाव से रहकर इस अजगरोचित व्रत का आचरण करता हूँ।''(15) इस प्रकार अपने आजगरव्रत का अर्थ मुनि ने जगत के यथार्थ को समझकर मैंने मोह को नष्ट कर लिया है, मेरा कर्मफल नष्ट हो चुका है ऐसा कहा है। मैंने तृष्णा से व्याकुल असंयत मन को वश में कर लिया है। मैं अजगर वृत्ति को अज्ञान का नाशक और समस्त दोषों से रहित मानता हूँ। दोष और तृष्णा का नाश कर चुका हूँ। इस प्रकार पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर को इस अजगर गीता का ज्ञान

बताया और कहा हे युधिष्ठिर! जो महापुरूष राग, भय, लोभ, मोह और क्रोध को त्यागकर इस आजगर व्रत का पालन करता है वह इस लोक में सानन्द विचरण करता है।

भारतीय संस्कृति के लौकिक ज्ञान के अग्रिम सोपान में हारीत गीता है, जिसका ज्ञान पितामह ने युधिष्ठिर को शरशय्या पर लेटे हुये ही दिया है। जिसमें दृष्टान्त प्राचीन काल के हारीतमुनि का है जो मुमुक्षु पुरूष के प्रधान कर्त्तव्यों से सम्बद्ध उपदेश दिये थे उसी को भीष्म ने बताया है। युधिष्ठिर ने प्रश्न पूछा– पितामह! प्रकृति से परे जो परब्रह्म का अविनाशी परमधाम है। उसे कैसे स्वभाव, किस तरह के आचरण, कैसी विद्या और किन कर्मों में तत्पर रहने वाला पुरूष प्राप्त कर सकता है। पितामह ने उत्तर दिया ''हे राजन! जो पुरूष मोक्षधर्म में तत्पर, मिताहारी और जितेन्द्रिय होता है, वह उस प्रकृति से परे परब्रह्म परमात्मा का जो अविनाशी परमधाम है। उसे प्राप्त कर लेता है। मुमुक्षु को लाभ–हानि में समान रहना, भोगों से अनासक्त रहना, परदोष न देखना, न कहना, परपीड़ा न देना, नश्वर जीवन के साथ किसी से शत्रुता न करे, दूसरे के कटुवचन को सह जाना, अहंकार न करना, क्रोध न करना, भिक्षावृत्ति का पालन करना, प्राणमात्र की रक्षा का प्रयत्न करना चाहिये, आत्मचिंतन करना चाहिये। स्थिरचित्त होना चाहिये। वानप्रस्थों और गृहस्थों के साथ कभी संसर्ग नहीं रखना चाहिये। ''इस प्रकार यह सन्यासआश्रम ज्ञानियों के लिये तो मोक्षरूप है। किन्तु अज्ञानियों के लिये श्रमरूप ही है। हारीत मुनि ने सम्पूर्ण धर्म को मोक्ष का विमान बताया है। जो पुरूष सबको अभय दान देकर घर से निकल जाता है, उसे तेजोमय लोक की प्राप्ति होती है तथा वह अनन्त परमपद प्राप्त करने में समर्थ होता है।''[16]

महाभारत कालीन संस्कृति के लौकिक ज्ञान के अन्तर्गत गीताज्ञान का अन्तिमस्थल वृत्रगीता के नाम से पहचाना जाता है। महाबली वृत्रासुर को जब देवताओं द्वारा पराजित होकर भी कोई शोक सन्ताप नहीं हुआ तो दैत्यगुरू शुक्राचार्य जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछने पर वृत्रासुर ने बड़े ज्ञानपूर्ण वचन कहे, साथ ही भगवान विष्णु के प्रभाव और कार्य को भी पूछा। जिसका समाधान वहाँ उपस्थित हुये सनत्कुमार जी ने दिया। यह भी भीष्म और युधिष्ठिर के संवाद का ही एक अंग है। युधिष्ठिर घोर संताप में थे और अपने जीवन को ही दुःख समझते थे कब सन्यास लें यही सोच रहे थे। तब उन्होंने पूछा कि पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रियाँ, पंच प्राण, मन और बुद्धि ये सत्रह तत्व, काम, क्रोध, लोभ, भय, स्वप्न ये संसार के पाँच हेतु, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पाँच विषय, तीन गुण, पंच महाभूत, अविधा, अहंकार और कर्म इन आठ तत्त्वों के ये समुदाय अड़तीस तत्त्व होते हैं। इनसे मुक्त हुये व्रतधारी मुनि पुर्नजन्म को नहीं प्राप्त होते हैं। परंतप पितामह! हम लोग भी कब अपना राज्य छोड़कर इस स्थिति को प्राप्त होंगे। पितामह ने संसार की स्थिति समझायी। कहा– संसार में कुछ भी स्थायी और अचल नहीं है। जब जीव तत्त्व ज्ञान द्वारा अज्ञान जनित अन्धकार को दूर कर देता है तब उसके हृदय में सनातन ब्रह्म प्रकाशित हो जाता है। परन्तु उसकी प्राप्ति संभव नहीं है। इसी को समझने के लिये वृत्रासुर और शुक्राचार्य की कथा है– वृत्रासुर ने कहा– मैंने सत्य और तप के प्रभाव से जीवों के आवागमन का रहस्य जान लिया है। इसलिये हर्ष और शोक नहीं करता हूँ। कर्मफल का ज्ञान है। हाँ इतना अवश्य जानना है कि–

''प्राणी किस हेतु से जीवन धारण करते हैं तथा किस कारण से कर्मों में प्रवृत्त होते हैं? जीव किस परम फल को पाकर अविनाशी एवं सनातन रूप से प्रतिष्ठित होता है?''[17]

प्राणी किस हेतु से जीवन धारण करते हैं? किस कारण से कर्मों में प्रवृत्त होते हैं? जीव किस प्रकार परम फल को पाकर अविनाशी एवं सनातन रूप से प्रतिष्ठित होता है? उसी कर्म अथवा ज्ञान से फल कैसे प्राप्त किया

जा सकता है। शुक्राचार्य ने तब भगवान विष्णु को ही संसार का कारण बताया है। जिस विष्णु का मस्तक और स्थान अनन्त है। तभी सनत्कुमार के आ जाने पर उन्हीं से भगवान विष्णु की महिमा पूछी गयी, क्योंकि समस्त संसार उसी में स्थित है। वही सम्पूर्ण संसार की सृष्टि करते हैं और समय आने पर विनाश करते हैं मुनि सनत्कुमार जी ने सांसारिक प्राणी को जो विष्णु का स्वरूप ज्ञान दिया जिसे प्राप्त किया जा सकता है। वह अलौकिक था –

''समस्त प्राणी इन्हें में लय को प्राप्त होते हैं और इन्हीं से प्रकट भी होते हैं। इन्हें कोई शास्त्रज्ञान, तपस्या और यज्ञ के द्वारा भी नहीं पा सकता है। केवल इन्द्रियों के संयम से ही उनकी उपलब्धि हो सकती है।''(18)

अर्थात् मन को स्थिर व शुद्ध करना सैकड़ों जन्मों में ही हो सकता है परन्तु यज्ञ और शम दम आदि से एक जन्म में ही शुद्ध हो जाता है। बार–बार प्रयत्न करके राग द्वेष को भी दूर कर सकता है। वे ही सम्पूर्ण प्राणियों में क्षर और अक्षर रूप से विद्यमान हैं। ग्यारह इन्द्रियों का वैकारिक सर्ग उन्हीं का स्वरूप है। वे अपनी चैतन्यमयी किरणों द्वारा सम्पूर्ण संसार में व्याप्त हो रहे हैं। हे दैत्यराज! नारायण का बल और प्रभाव अनन्त है। वृत्रासुर ने नारायण का पूर्ण मनोयोग से ध्यान किया और अपनी आत्मा का परमात्मा में ध्यान लगाकर प्राण त्याग दिये। तभी युधिष्ठिर ने पितामह से कहा कि भगवान विष्णु– ये हमारे जनार्दन श्री कृष्ण ही तो हैं? पितामह ने उसकी स्वाकारोक्ति में नारायण का चतुर्थ अंश श्री कृष्ण को बताया। इसी अंश से तीनों लोकों की रचना होती है। जो सनातन नारायण हैं वे अत्यन्त बलशाली हैं। सबके अधीश्वर भगवान श्री हरि कल्पान्त में जल के भीतर शयन करते हैं तथा वे प्रसन्नआत्मा सृष्टिकर्त्ता ईश्वर उन समस्त शाश्वत लोकों में विचरण करते हैं। इतना ज्ञान देने पर युधिष्ठिर ने उन्हें परमार्थ तत्व का ज्ञाता कहकर सम्बोधन किया और कहा कि वृत्रासुर ने आत्मा के शुभ एवं यथार्थ स्वरूप का साक्षात्कार कर लिया था इसलिये वह सुखी था, शोक नहीं करता था। हे पितामह हम लोग आपत्ति से घिरे हुये हैं दुःख–सुख से मिश्रित भाव या केवल दुःखमय में आसक्त है ऐसी दशा में हमें पता नहीं कौन सी गति प्राप्त होगी। पितामह भीष्म ने समझाया– ''युधिष्ठिर तुम सभी पाण्डव विशुद्ध कुल से सम्पन्न और तीक्ष्ण व्रतों का भलीभाँति पालन करने वाले हो अतः देवलोक में विहार करके पुनः मनुष्य शरीर ही प्राप्त करोगे। तुम लोग सिद्धि प्राप्त करके सिद्धों में गिने जाओगे। दुर्गति का भय मत करो तुम लोग निर्मल एवं निष्पाप हो।''(19)

इस प्रकार महाभारत का शान्तिपर्व मनुष्य के चित्त को शान्त करके अनासक्त भाव से कर्म में लगाता है। भीष्म–युधिष्ठिर संवाद के रूप में पुत्र–गीता भी आती है। उसमें वेद अध्ययन में तत्पर ब्राह्मण को उसके पुत्र जिसका नाम मेधावी था उसने जीवन तत्त्व का मार्मिक उपदेश दिया। उसने अपने पिता को उपदेश दिया कि प्रत्येक मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है। मृत्यु कभी भी बिना पूर्व सूचना के आ सकती है। अतः प्रत्येक दशा में आसक्ति से बचकर धर्माचरण तथा सत्यव्रत का पालन करते रहना चाहिये यही परम साधन है। अमृत और मृत्यु दोनों इस शरीर में स्थित हैं मनुष्य मोह से मृत्यु को और सत्य से अमृत को प्राप्त होता है। काम और क्रोध को हृदय से निकाल देना चाहिये। ये हमारी भारतीय संस्कृति का ही ज्ञान है जो विश्व को कल्याणमय जीवन का मार्ग दिखा रहा है–

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः।
नास्ति रागसमं दुखं नास्ति त्यागसमं सुखम्।।

अर्थात् संसार में विद्या (ज्ञान) के समान कोई नेत्र नहीं है। सत्य के समान कोई तप नहीं है। राग के

समान कोई दुख नहीं है और त्याग के समान कोई सुख नहीं है। इसलिये हे युधिष्ठिर! तुम भी सत्य धर्म में स्थित होकर यथायोग्य व्यवहार करो।

सन्दर्भ सूची :-

1. षड्ज गीता – महाभारत शान्तिपर्व (युधिष्ठिर प्रसंग)

   श्लोक–

   धर्मे चार्थे च कामे च लोकवृत्तिः समाहिता।

   तेषां गरीयान् कतमो मध्यमः को लघुश्च कः।। 2 श्लोक

2. षड्ज गीता – महाभारत शान्तिपर्व (विदुर प्रसंग)

   श्लोक– 4, 5, 6, 7, 8, (भाव अर्थ में)

   श्लोक– 9 –

   तस्माद धर्मप्रधानेन भवितव्यं यतात्मना।

   तथा च सर्वभूतेषु वर्तिवत्यं यथात्मानि।।

3. षड्ज गीता – महाभारत शान्तिपर्व (अर्जुन प्रसंग)

   श्लोक– 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18 (भाव अर्थ में)

   श्लोक– 19 –

   आस्तिका नास्तिकाश्चैव नियताः संयम परे।

   अप्रज्ञानं तमोभूतं प्रज्ञानं तु प्रकाशिता।।

4. षड्ज गीता – महाभारत शान्तिपर्व (माद्रीकुमार प्रसंग)

   श्लोक– 20, 21, 22, 23, 25, 26, 27 (भाव अर्थ में)

   श्लोक– 24 –

   यो थों धर्मेण संयुक्तो धर्मो यश्चार्थसंयुतः।

   तद्धि त्वामृतसंवादं तस्मादेतौ मताविह।।

5. षड्ज गीता – महाभारत शान्तिपर्व (भीमसेन संवाद)

   श्लोक– 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34, 35, 36 (भाव अर्थ में)

   श्लोक– 37 –

   नाकामतो ब्राह्मणाः स्वन्नमर्था–

   न्नाकामतो ददाति ब्रह्मणेम्यः।

   नाकामतो विविधा लोकचेष्टा,

   तस्मात् कामः प्राक् त्रिवर्गस्य दृष्टः।।

6. षड्ज गीता – महाभारत शान्तिपर्व (युधिष्ठिर संवाद)

   श्लोक– 44 –

यो वै न पापो निरतो न पुण्यै
नाथे न धर्मे मनुजो न कामे
विमुक्तदोषः समलोष्टकाळचनो
विमुच्यते दुःखसुखार्थसिद्धेः।

7. पिंगला गीता – महाभारत शान्तिपर्व (भीष्म युधिष्ठिर संवाद)
श्लोक– 1, 2, 3, 4 –

8. पिंगला गीता – महाभारत शान्तिपर्व (भीष्म द्वारा राजा सेनजित् की कथा का वर्णन)
श्लोक– 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11

9. पिंगला गीता – (महाभारत शान्तिपर्व) राजा सेनजित् और ब्राह्मण संवाद
श्लोक – 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21
श्लोक – 41, 42
बुद्धिमन्तं कृतप्रशं शुश्रूषुमनसूयकम्।
दान्तं जितेन्द्रियं चापि शोको न स्पृशते नरम्।।
एतां बुद्धिं समास्थाय गुप्तचित्तश्चरेद बुधः।
उदयास्तमयज्ञं हि न शोकः स्प्रष्टुमर्हति।।

10. पिंगला गीता – (महाभारत शान्तिपर्व) पिंगला वेश्या का स्वयं की आत्मा से संवाद
श्लोक – उन्मत्ताहमनुन्मत्तं कान्तमन्ववसं चिरम्।
अन्तिके रमणं सन्तं नैनमध्यगमं पुरा।।
स्कस्थूणं नवद्वारमपिधास्याम्यगारकम्।
का हि कान्ताभिहायान्तमयं कान्तेति मंस्यते।।

11. शम्पाक गीता – (महाभारत शान्तिपर्व) भीष्म श्म्पाक विचार
भावव्याख्या – 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10
श्लोक – 22
नात्यक्त्वा सुखमाप्नोति नात्यक्त्वा विन्दते परम।
नात्यक्त्वा चाभयः शतै त्यक्त्वा सर्वं सुखी भव।।

12. मङ्गिगीता – (महाभारत शान्तिपर्व)
श्लोक – 2, 3
सर्वसाम्यमनायासं सत्यवाक्यं च भारत।
निर्वेदश्चाविधित्सा चयस्य स्यात् स सुखी नरः।।
एतान्येव पदान्याहुः पळच वृद्धाः प्रशान्तये।
एष स्वर्गश्च धर्मश्च सुखं चानुतमं मतम्।।

13. मङ्गिगीता – (महाभारत शान्तिपर्व) भीष्म द्वारा शुकदेव मुनि का दृष्टान्त देना
श्लोक – 15

यः कामानाप्नुयात् सर्वान् यश्चैतान् केवलांस्त्यजेत्।
प्रापणात् सर्वकामानां परित्यागो यिशिष्यते।।

14. मङ्गिगीता – (महाभारत शान्तिपर्व) भीष्म द्वारा मङ्गि ऋषि की कथा बताना
श्लोक – 53, 54

एतां बुद्धिं समास्थाय मङ्गिं र्निवेदभागतः।
सर्वान् कामान् परित्यज्य प्राप्य ब्रह्म महत्सुखम्।।
दम्यनाशकृते मङ्गिरमृतत्त्वं किलागमत्।
अच्छिनत् काममूलं स तेन प्राप महासुखम्।।

15. आजगर गीता – (महाभारत शान्तिपर्व) प्रहलाद को दिया गया मुनि का ज्ञान
श्लोक – 26

अचलितमतिरच्युतः स्वधर्मात्।
परिमित संसरणः परावरज्ञः।
विगतभयकषाय लोभमोहो
व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि।।

16. हारीत गीता – (महाभारत शान्तिपर्व) युधिष्ठिर–भीष्म संवाद
श्लोक – 21, 22

विजानतां मोक्ष एष श्रमः स्यादविजानताम्।
मोक्षयानमिदं कृत्स्नं विदुषां हरितो ब्रवीत्।।
अभयं सर्वभूतेम्यो दत्त्वा प्रव्रजेद् गृहात्।
लोकास्तेजोमयास्तस्य तथानन्त्याय कल्पते।।

17. वृत्रगीता – (महाभारत शान्तिपर्व) युधिष्ठिर–भीष्म संवाद
श्लोक – 32 (प्रथम अध्याय)

कस्माद् भूतानि जीवन्ति प्रवर्तन्ते तथा पुनः।
किं वा फलं परम प्राप्य जीवःतिष्ठति शाश्वतः।।

18. वृत्रगीता – (महाभारत शान्तिपर्व) सनत्कुमार का वृत्रासुर को दिया ज्ञान
श्लोक – 9 (द्वितीय अध्याय)

अस्मिन् गच्छन्ति विलयमस्माच्च प्रभवन्त्युत।
नैष ज्ञानवता शक्यस्तपसा नैव चेज्यया।
सम्प्राप्तुमिन्द्रियाणां तु संयमेनैव शक्यते।।

19. वृत्रगीता – (महाभारत शान्तिपर्व) युधिष्ठिर–भीष्म संवाद
श्लोक – 69

शुद्धाभिजनसम्पन्नाः पाण्डवाः संशितव्रताः।
विहृत्य देवलोकेषु पुनर्मानुषमेष्यथ।।

विशेष आभार :-

(1) संस्कृत साहित्य का इतिहास
डॉ० उमाशंकर शर्मा ऋषि युवराज पब्लिकेशन, आगरा।

(2) भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व
डॉ० सुखवीर सिंह
डॉ० विजेन्द्र कुमार शर्मा

(3) गीता संग्रह – गीताप्रेस गोरखपुर

E-mail: archana.giri2702@gmail.com
Mob.: 9411472100

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 80-90

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय दर्शन में कर्म एवं पुनर्जन्म की अवधारणा

डॉ० सुधीर कुमार झा

सहायक प्राचार्य (आधुनिक दर्शन),

सिद्धेश्वरी लक्ष्मीनाथ संस्कृत महाविद्यालय, गजहरा, मधुबनी, बिहार, पिन– 847227

चार्वाक के अतिरिक्त अन्य सभी भारतीय दार्शनिकों एवं विचारकों ने कर्म एवं पुनर्जन्म सम्बन्धी अवधारणा की पुष्टि की है। चूँकि भारतीय दर्शन के लिए वेद ही आधार है, इसलिए उन्होंने इस अवधारणा को भी वैदिक अवधारणा के रूप में स्वीकार किया है। षड्दर्शन के साथ–साथ बौद्ध एवं जैन दर्शन में विश्वास करने वाले विचारकों ने भी विश्व की नैतिक व्यवस्था में विश्वास व्यक्त किया है। सब में मतान्तर है किन्तु सभी आध्यात्मिक व्यक्ति हैं। इनका आध्यात्मिक चरित्र है। इसलिए इन्होंने विश्व में चिरन्तन नैतिक व्यवस्था का समर्थन किया है। पाश्चात्त्य दार्शनिकों ने भी इस बात की पुष्टि की है। इस नैतिक–व्यवस्था की दार्शनिक विवेचना कर्म–सिद्धान्त के रूप में होती है।

कर्म सिद्धान्त के अनुसार कर्मों का परिणाम निकलता ही है। यानी हमें अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। शुभ या उचित कर्मों से सुख या आनन्द तथा अनुचित एवम् अशुभ कर्मों के परिणाम स्वरूप दुःख झेलना पड़ता है। इस अल्प आयु में व्यक्ति द्वारा सम्पादित सभी कर्मों का फल भोगना सम्भव नहीं है। इसके लिए व्यक्ति को बार–बार जन्म लेना पड़ता है, ताकि वह अपने पूर्वजन्म में किये गये कर्मों का फल प्राप्त कर सके। बार–बार जन्म लेना ही पुनर्जन्म है। इस तरह पुनर्जन्म की सत्ता सिद्ध है। इस तरह पूनर्जन्म का सिद्धान्त कर्म–सिद्धान्त से जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि भारतीय दर्शन में कर्मवाद के साथ–साथ पुनर्जन्म की अवधारणा का भी जोरदार समर्थन किया गया है।

भारतीय–दर्शन में मोक्ष को परम पुरुषार्थ कहा गया है। यानी मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य बतलाया गया है। व्यक्ति अज्ञानवश कुत्सित कर्म कर बैठते हैं और कुत्सित अथवा अनुचित कर्मों के कारण वह बन्धन ग्रस्त हो जाता है। बन्धन ग्रस्त व्यक्ति को बार–बार जन्म लेना पड़ता है और फिर मृत्यु को प्राप्त करता है। जन्म–मरण के चक्कर में फसना दुःख का कारण है। दुःखों के पूर्ण विनाश से आनन्द की प्राप्ति होती है और उसी के लिए सभी चिन्तित रहते है। जन्म–मरण के चक्कर से मुक्त होना ही मोक्ष कहलाता है। दूसरे शब्दों में पुनर्जन्म से निजात पाना ही मोक्ष है।

इस तरह हम देखते हैं कि मोक्ष की सार्थकता सिद्ध करने के लिए पुनर्जन्म में आस्था रखना आवश्यक है। यही कारण है कि वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, पुराणों, और रामायण एवं भगवद्गीता में मोक्ष सम्बन्धी अवधारणा के साथ–साथ पुनर्जन्म की अवधारणा की विशद् विवेचना की गई है। चार्वाक एवं उनके समर्थकों को छोड़कर

सभी भारतीय दार्शनिकों ने अपने–अपने ढंग से पुनर्जन्म सम्बन्धी अवधारणा की सम्पुष्टि की है। मोक्ष और पुनर्जन्म सम्बन्धी अवधारणा के साथ–साथ भारतीय चिन्तकों ने कर्म एवं कर्म–फल सम्बन्धी अवधारणा का भी समर्थन किया है। इनका कहना है कि जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है वह वैसा ही फल प्राप्त करता है। जो स्थान भौतिक जगत् में कार्य–कारण नियम का है, वही स्थान नैतिक जगत् में कर्म सिद्धान्त का है। जिस प्रकार भौतिक संसार की व्यवस्था की व्याख्या कार्य–कारण नियम के आधार पर की जाती है ठीक उसी तरह नैतिक जगत् की व्याख्या के लिए कर्म–सिद्धान्त की सहायता लेनी पड़ती है।

विभिन्न मनुष्यों में जो अन्तर दृष्टिगत होता है उसका कारण और उस कारण की व्याख्या कर्म–सिद्धान्त की सहायता से ही सम्भव हो पाती है। व्यक्ति का वर्तमान जीवन उसके विगत कर्मों का ही परिणाम है और उसका भावी जीवन वर्तमान जीवन के कर्मों का फल कहा जा सकता है। जो व्यक्ति इस जीवन में सुखी एवं सम्पन्न नजर आते हैं, वे निश्चय ही पूर्व जीवन में उचित या शुभ कार्य किये हुए हैं। इसी तरह जो दुःखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं या दरिद्रता की भट्ठी में जल रहे हैं वे निश्चित ही विगत जीवन में अनुचित कर्म किये हुए हैं। सबने स्वीकार किया है कि व्यक्ति अपना भाग्य विधाता स्वयं है। वर्तमान जीवन में अच्छे या शुभ कर्मों की बदौलत वह भावी जीवन की सुन्दर एवं मजबूत इमारत खड़ी कर सकता है। कहा भी गया है कि–[1]'अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मे राधीदमहं येएवाऽस्मि सोऽस्मि।"

वेदों से लेकर आजतक के सभी भारतीय चिन्तकों ने कर्म–सिद्धान्त का समर्थन किया है यहीं कारण है कि इनके तमाम धार्मिक ग्रन्थों में इसकी चर्चा एवं सम्पुष्टि पाते हैं। वैदिक ऋषियों ने विश्व की नैतिक–व्यवस्था में अटूट आस्था व्यक्त की है। वेदों का 'ऋत' शब्द इसी आस्था एवं व्यवस्था का द्योतक है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार–[2] 'मनुष्य को यही निश्चय करना चाहिये कि मैं अब जैसा कर्म करता हूँ वैसा ही परमेश्वर की व्यवस्था से फल भोगता हूँ और भोगूँगा। अब सुख भोगने के लिए धर्मयुक्त कर्म ही करना चाहिये कि जिससे कभी दुःख न हो।' अतः ऋत आस्था एवं व्यवस्था का द्योतक है। डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार–[3] 'वह नियम जिसका वरुण अभिरक्षक है, ऋत कहलाता है। ऋत का शब्दार्थ है, वस्तुओं की कार्य विधि। ऋत से तात्पर्य साधारणतः सब प्रकार के नियमों से है और न्याय के सर्वव्यापी भावका भी द्योतक है। इस भाव का सुझाव प्रारम्भ में सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रगण की नियमित गतियों एवं दिन और नियमित परिवर्तनों से एवं ऋतुओं के नियमित क्रम के कारण हुआ होगा। ऋत से तात्पर्य विश्व की व्यवस्था से भी है। इस विश्व के प्रत्येक पदार्थ में जो व्यवस्था पाई जाती है वह ऋत के ही कारण है। दृश्यमान् जगत् उसी ऋत की छाया मात्र है, जो कि एक स्थिरता है जो सब प्रकार के उथल–पुथल एवं परिवर्तन की प्रक्रियाओं में अपरिवर्तित रहती है।'

समस्त विश्व–ब्रह्माण्ड ऋत पर आश्रित है और इसी के अन्दर रहकर गति करता है। अतः कर्म सिद्धान्त की व्यापकता समस्त संसार में पाई जाती है। मनुष्य तो क्या देवता भी इसके बन्धन से मुक्त नहीं है। यदि संसार में कोई नियम है तो वह अवश्य ही अपना प्रभाव डालेगा। यदि कर्म का फल किसी कारणवश संसार में नहीं मिला तो वह अन्यत्र मिलेगा ही, वह अपना फल प्रदान किये बिना नहीं रह सकता है। जहाँ नियम 'ऋत' है वहां अन्याय तथा उच्छृंखलता केवल सामयिक बात ही मानी जा सकती है। वस्तुतः भारतीय विचारधारा में कर्म–सिद्धान्त की जो विशेषता दिखाई पड़ती है, उसका आधार यही 'ऋत' है।

उपनिषद् को वेद का ज्ञान काण्ड भाग माना जाता है। इसमें (उपनिषद् में) इस 'ऋत' को कर्मवाद की

संज्ञा दी गई है। नैयायिकों एवं वैशेषिकों ने इसे (कर्म सिद्धान्त) अदृष्ट अथवा अपूर्व के नाम से सम्बोधित किया है। अदृष्ट स्वयं अचेतन होने के कारण व्यक्ति को उनके कर्मों के लिए दण्ड या पुरस्कार देने में समर्थ नहीं है, अतः ईश्वर की आवश्यकता है। अदृष्ट संचालन ईश्वर ही करता है। ईश्वर के नियंत्रण में रहकर अदृष्ट जीवों में कर्मानुसार सुख–दुख का बँटवारा होता है। अतः कहा गया है कि–[4] 'ईश्वरःकारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्।' मीमासकों का कहना है कि कर्म–सिद्धान्त स्वचालित एवं स्वतन्त्र है। इस पर ईश्वर के नियन्त्रण का प्रश्न ही नहीं उठता है। जैनियों की दृष्टि में कर्म ही बन्धन का कारण है। कर्म ही आत्मा को शरीर से जोड़ता है। अतः जीव और कर्म के संयोग को ही बन्धन कहा जाता है।

जैनियों का मानना है कि कर्म पुद्गल (जड़ पदार्थ) का सूक्ष्म रूप है। जीव अपने कर्मों एवं संस्कारों के कारण शरीर धारण करता है और वासनाओं का शिकार होता है। इनकी दृष्टि में शरीर दो तरह के होते हैं– स्थूल और सूक्ष्म। अतः शरीर का अर्थ केवल स्थूल शरीर नहीं बल्कि इन्द्रिय, मन एवं प्राण भी होता है, क्योंकि बाह्य इन्द्रियाँ, मन एवं प्राण भी इसी के अन्तर्गत आते हैं। व्यक्ति का किसी विशेष परिवार, वंश या सम्प्रदाय में जन्म लेना उसके पूर्व कर्मों एवं संस्कारों पर निर्भर है। जैनियों की दृष्टि में कर्म भी अनेक प्रकार के होते हैं। ज्ञान और दर्शन के विषय में किये गये प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन एवं उपघात ये ज्ञानावरण कर्म और दर्शनावरण कर्म के आस्रव हैं। निज आत्मा में, दूसरी आत्मा में या उभय आत्माओं में स्थित दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन ये आसव वेदनीय कर्म के आस्रव हैं। कषाय के उदय से होने वाला आत्मा का तीव्र परिणाम चरित्र, मोहनीय कर्म का आस्रव है।'[5] गोत्र–कर्म व्यक्ति का गोत्र निर्धारित करता है। आयु–कर्म आयु को निश्चित करता है। इसी तरह और कई तरह के कर्मों की विवेचना जैन शास्त्रों में की गई है। किन्तु आठ प्रकार के कर्मों की धारणा अधिकांश जैनियों को मान्य है। कर्म कारण ही मनुष्य अधोलोक चला जाता है। जहाँ पुण्य और पाप के फल सुख–दुःख रूप में दिखाई देते हैं वह लोक है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण मोहनीय अन्तराल, वेदनीय, आयु–कर्म, नाम–कर्म, गोत्र–कर्म की अपेक्षा लोक के आठ भेद हैं। कर्म के कारण ही मनुष्य ऊपर या नीचे आते–जाते रहते हैं।

बौद्ध दर्शन में कर्म–सिद्धान्त की स्थापना प्रतीत्य समुत्पाद के द्वारा की गई है। इसके अनुसार वर्तमान जीवन विगत जीवन का परिणाम है और वर्तमान जीवन की आधारशिला पर भावी जीवन का निर्माण होता है। डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार– [6]'बौद्ध धर्म के अनुसार कर्म एक यान्त्रिक सिद्धान्त नहीं है वरन् स्वरूप में इन्द्रिय है। आत्मा बढ़ती है और विस्तृत होती है। यहाँ आत्मा नहीं है अपितु एक विकसित होती हुई चेतना है, जो अवस्थाओं की श्रृंखला में विस्तृत हो सकती है। यद्यपि वर्तमान काल का निर्णय भूतकाल से होता है भविष्य फिर भी हमारे आगे चुनाव के क्षेत्र के रूप में खुला है, जिसे हम स्वेच्छा की प्रेरणा के ऊपर निर्भर कर सकते हैं और भूतकाल द्वारा वर्तमान का निर्णय भी केवल यान्त्रिक नहीं है। कर्म विधान हमें बतलाता है कि भूतकाल और वर्तमान के मध्य में तारतम्य है और यह कि वर्तमान काल भूतकाल के साथ अनुकूलता रखता है। इसका अर्थ यह नहीं कि वर्तमान काल भूतकाल की ही सम्भव उपज है। इनकी दृष्टि में नित्य कुछ भी नहीं है, जो दर्शन नित्य कारण और आत्मा की बात करता है वह मिथ्या है।"

इस समस्या में सारी कठिनाईयां बुद्ध के दृष्टिकोण के मनोविज्ञान युक्त और तर्क सम्मत होने के कारण हैं। गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि बौद्ध धर्म का विरोध केवल अनियतिवाद के इस

अवैज्ञानिक मत के साथ है जो यह कहता है कि मनुष्य के कार्य उसके उद्देश्यों से ही संचालित नहीं होते और जिसके अनुसार स्वतंत्र इच्छा शक्ति एक ऐसी अपरिमित शक्ति है जो किसी न किसी प्रकार से मन के सुव्यवस्थित कार्य सम्पादन में बाधा देती है। दरअसल इस संसार में यान्त्रिक विधान से भी उपर कुछ है, यद्यपि व्यक्तिगत विचारों एवं इच्छाओं का एक सम्पूर्ण प्राकृतिक इतिहास भी है।

बौद्धों के अनुसार दो तरह के कर्म हैं– प्रथम प्रकार के वे कर्म हैं जो स्वार्थ, वासना, मोह, भोग, ईर्ष्या, द्वेष आदि के वशीभूत होकर किये जाते हैं। ये कर्म व्यक्ति को बन्धन में डालते हैं। द्वितीय प्रकार के कर्म वे हैं जो निःस्वार्थभाव से लोककल्याण की भावना से किये जाते हैं। ये निष्का कर्म व्यक्ति को बन्धन में नहीं डालते हैं। विनयपिटक में इन कर्मों एवं नीतियों की सुन्दर विवेचना मिलती है। बौद्धों का कहना है कि जिस प्रकार एक दीपक से दूसरा दीपक जल उठता है उसी प्रकार एक जीवन–ज्योति से दूसरी जीवन–ज्योति जल उठती है। एक जीवन का अन्तिम साँस दूसरे जीवन की प्रारम्भिक साँस बन जाती है।

बौद्धों की तरह जैनियों ने भी पुनर्जन्म एवं कर्म–सिद्धान्त का समर्थन किया है। जैनियों के अनुसार मनुष्य अपने कर्मों के मुताबिक ही किसी योनि–विशेष में जन्म लेता है। मनुष्य अपने कर्मों के आधार पर ही पुनः मनुष्य, पशु, कीट–पतंग या पेड़–पौधों आदि की योनि में जन्म ले सकता है। जहाँ तक भारतीय दर्शन के अर्न्तगत मीमांसा–दर्शन का प्रश्न है, इसमें अन्य दर्शनों की अपेक्षा कर्म–सिद्धान्त पर अधिक जोर दिया गया है। इसे वेदों का कर्मकाण्ड भाग भी कहा जाता है। जैसा कि पहले भी संकेत किया जा चुका है कि वेद के दो भाग है– मन्त्र और ब्राह्मण। ब्राह्मण ग्रन्थों के अन्तर्गत यज्ञादि कर्म–काण्ड है और दूसरा आरण्यक अथवा उपनिषद् ज्ञान–काण्ड है।

मीमांसा का मुख्य उद्देश्य वैदिक कर्म–काण्ड की पुष्टि करना है। इसलिए इसे वेद का ब्राह्मण–भाग कहा जा सकता है। उसमें कर्म–काण्ड (वैदिक प्रकियाओं) को इतना अधिक महत्त्व दिया गया है कि देवताओं का स्थान गौण हो गया है। मीमांसकों के लिए कर्त्तव्यता का मूल स्रोत एक मात्र अपौरुषेय वेद–वाक्य है जो निष्काम–कर्म करने के लिए आदेश देता है। सम्भवतः कर्त्तव्य–पालन इसलिए नहीं करना चाहिए कि उससे हमारा उपकार होगा बल्कि इसलिये कि कर्त्तव्य–पालन करना हमारा धर्म है। अब प्रश्न उठता है कि मीमांसकों की दृष्टि में कर्म क्या है? ऋत्विक और यजमान के व्यापार का नाम कर्म है। श्रीशंकराचार्य ने भी बताया है कि– [7]'ऋत्विक और यजमान के व्यापार का नाम कर्म है और उस कर्म से जिसकी उत्पत्ति होती है वह अपूर्व रूप यज्ञ–कर्म से उत्पन्न होता है।' वैदिक आज्ञाएँ धर्म के ब्यौरों का प्रतिपादन करती हैं। यदि हम उन आज्ञाओं का पालन नहीं करते तो केवल यही नहीं कि हम अपने सुख से वंचित होते हैं, बल्कि दुःख भोगते हैं। इनकी दृष्टि में अनुचित–कर्म ही बन्धन का कारण है। उचित–कर्म से मोक्ष की प्राप्ति होती है और अनुचित–कर्म बन्धन का जाल बिछाते हैं।

मीमांसा दर्शन के अनुसार उचित कर्म वह है जो वेदों के नियमों के अनुकूल हों। मनुस्मृति में भी इस बात की सम्पुष्टि की गई है। मीमांसा दर्शन को पूर्व भाग को पूर्व मीमांसा और उत्तर भाग को वेदान्त कहा जाता है। इसे ईश्वरीय ज्ञान भी कहा गया है। पूर्व मीमांसा द्वारा प्रतिपादित नीति शास्त्र ईश्वरीय ज्ञान पर आधारित है। वैदिक आज्ञाएँ धर्म के ब्यौरों का प्रतिपादन करती हैं। मीमांसक के अनुसार सत्कर्म वह है जो वेद विहित अथवा वेदानुकूल हैं। एक हिन्दू का जीवन वैदिक नियमों से शासित है, इसलिए हिन्दू विधान की व्याख्या के लिए

मीमांसा के नियम बहुत महत्त्वपूर्ण है।[8] मीमांसकों का कहना है कि वेद क्रियार्थक है औरजो क्रियार्थक नहीं है उसे निरर्थक मानना चाहिए। शास्त्र की यह विशेषता है कि वह प्रवृत्ति या निवृत्ति मार्ग का उपदेश करे, वेदों का अभिप्राय मनुष्यों को उनके कर्त्तव्यों की शिक्षा देनी है। इसी शिक्षा को धर्मोपदेश कहा जाता है। 'मीमांसकों एवं मनु के अनुसार भी जो व्यक्ति ऋषियों, देवताओं तथा पितरों के ऋणों का परिशोधन किये बिना ही मोक्ष की इच्छा करता है वह अधोगति को प्राप्त होता है।[9] इसलिये पाँच प्रकार के ऋणों को स्वीकार किया गया है। इन ऋणों से निजात पाने के पश्चात् ही मुक्ति मिलती है।

श्रीमद्भागवद्गीता–रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र में कहा गया है कि 'मीमांसकों की दृष्टि से समस्त कर्मों के नित्य, नैमित्तिक, काम्य और निषिद्ध ये चार भेद होते हैं। इनमें से नित्य–कर्मों को न करने से पाप होता है और कर्म तभी करना पड़ता है जब उसके लिए कोई विशेष (सन्ध्या आदि) नैमित्तिक निमित्त उपस्थित हो। इसलिये मीमांसकों का कहना है कि इन दोनों कर्मों को करना ही चाहिए तथा निषिद्ध कर्म करने से पाप लगता है और काम्य–कर्मों को करने से उनके फलों को भोगने के लिए पुनः जन्म लेना पड़ता है। इसलिए उन्हें भी नहीं करना चाहिए।[10] अर्थात् वेदव्यास की नजर में नित्य–कर्मों के साथ–साथ यज्ञ, दान आदि का परित्याग नहीं करना चाहिये।

वेदान्त का कहना है कि श्रुति आत्म–स्वरूप है, इसलिए वह इसी का बोध कराती है। मीमांसकों का कहना है कि यह वेदान्तियों की भूल है। वेदान्तियों की दृष्टि में श्रुति अन्त में कर्म–त्याग की शिक्षा देती है। मीमांसकों की दृष्टि में श्रुति का तात्पर्य कर्म–त्याग नहीं बल्कि प्रवृत्ति–मार्ग का उपदेश देना है। वेदान्त के प्रचार के पूर्व कम से कम हिन्दुओं में मीमांसकों का यह सिद्धान्त सर्वमान्य सा था कि प्रत्येक मनुष्य को ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थ आश्रमों के बाद ही वानप्रस्थ तथा संन्यास की स्थितियों में प्रवेश करना चाहिए।[11] इनका यह भी मानना है कि श्रुति से यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि वह आत्मा और परमात्मा का स्वरूप समझाये। आत्मा क्या है? इसका उत्तर देना श्रुति का काम नहीं है। आत्मा को लेकर क्या करना चाहिए यह श्रुति का विषय हो सकता है। इसीलिए बताया गया है कि 'आत्मा वऽऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्योमन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।' अर्थात् आत्मा के विषय में सुनना चाहिए, उसी का मनन और उपासना करनीचाहिए। भास्कराचार्य ने भी माना है कि धर्म ज्ञान का एक आवश्यक अंग है जिसका परिणाम मोक्ष है। वेरामानुज (विशिष्टाद्वैतवाद का प्रवर्तक) के मत को स्वीकार करते हैं और उनके मत को ही अपने ढंग से प्रस्तुत करते हैं। अथवा इसे अधिक सही रूप में ज्ञान–कर्म–समुच्चय अथवा कर्म–ज्ञान का संयोग कहना चाहिए। रामानुज का प्रभाव हिन्दू धर्म के परवर्ती इतिहास में बराबर पाया जाता है। माधवाचार्य, वल्लभाचार्य, चौतन्य, रामानन्द, कबीर और नानक द्वारा प्रचारित धार्मिक आन्दोलन तथा बंगाल का ब्रह्म–धर्म अथवा ब्रह्म–समाज का सुधारवादी संगठन रामानुज के ईश्वरवादी आदर्शवाद के बहुत कुछ ऋणी है।[12]

गोस्वामी तुलसीदास ने तो जन–जन तक इस मान्यता को पहुँचा दिया है और आज तक जो कुछ रामानुज की मान्यताएँ सुरक्षित बची हुई हैं वह आगे भी प्रेरणा देती रहेगी जो गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास के कारण ही है। मीरा ने भी रामानुज की परम्परा का ही निर्वाह की है। जहाँ तक मीमांसको का प्रश्न है, वहबाद में चलकर दो भागों में बंट गये। एक मत का प्रतिनिधित्व प्रभाकर ने किया और दूसरे का कुमारिलभट्ट। कुमारिल के अनुसार धर्म अधर्म क्रियाओं के नाम हैं। याज्ञिक अनुष्ठान धर्म है और हिंसादिकर्म अधर्म। यह न्याय–वैशेषिक

दर्शन को भी मान्य है। श्री सुरेश्वराचार्य ने मीमांसा दर्शन की मोक्ष–प्रकिया की विवेचना करते हुए बताया है कि काम्य और निषिद्ध कर्मों का त्याग कर देने से और नित्य, नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान करते रहने से मुक्ति–लाभ होता है। विवाह, जन्म, मृत्यु आदि के समय जो कर्म किये जाते हैं वे नैमित्तिक कर्म कहलाते हैं। 'कुछ ऐसे कर्म होते हैं जिन्हें विशेष अवसरों पर किया जाता है। जैसे विवाह, जन्म, मृत्यु आदि के समय कुछ कर्म किये जाते हैं उन्हें नैमित्तिक कर्म कहा जाता है।[13] इसे कभी नहीं छोड़ना चाहिए। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी बताया है कि–[14] 'धर्म में प्रवृत्ति, अधर्म से निवृत्ति, क्रिया–कुशलता की सिद्धि और यज्ञ–क्रिया के अनुष्ठान आदि करने में सदा प्रवृत्त रहो।' यज्ञ के करने से वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा संसार में अत्यन्त सुख सिद्ध होता है, इसलिए इसे करते रहना चाहिए।' इतना ही नहीं बल्कि अपने आप से वृद्धि को प्राप्त हुए हम लोग अच्छे कार्यों को करके तथा औरों से अच्छे काम कराके सब प्राणियों का सुख और विद्या की उन्नति नित्य करें।

सामवेद में भी बताया गया है कि 'कल्याणकारी यज्ञों का स्वामी सबको बसाने वाला तथा अत्यन्त प्रशंसनीय है।'[15] काम्य–कर्मों का फल स्वर्ग–प्राप्ति आदि है, जिससे मोक्षार्थी को बचना चाहिए। निषिद्ध–कर्मों से अधोगति मिलती है इसलिए वे सर्वथा त्याज्य ही हैं। नित्य, नैमित्तिक कर्मों का कोई विशेष फल नहीं है, उनसे केवल दोष दूर होते हैं, इसलिए उन्हें करते रहना चाहिए।'[16] डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में–[17] 'मोक्ष की प्राप्ति के लिए हमें सन्ध्या इत्यादि नित्य–कर्मों का पालन करना चाहिए और उचित अवसर पर नैमित्तिक–कर्मों का पालन करना चाहिए। ये बिना किसी प्रतिबन्ध के कर्तव्य हैं। यदि इन्हें हम पूर्ण नहीं करते तो हमें पाप लगता है।' अतः नैमित्तिक–कर्मों का पालन इस संसार में एक अनिवार्य शर्त है। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने इनके पूर्व (डॉ. राधाकृष्णन् के) भी इस बात की सम्पुष्टि की है।

मीमांसकों की दृष्टि में नैमित्तिक–कर्म प्रतिबन्ध रहित कर्तव्य कहलाते हैं। इसलिए इन कर्तव्य–कर्मों का पालन करते रहना चाहिए और इसी से मोक्ष लाभ होगा। इसके अतिरिक्त मीमांसकों ने नित्य, काम्य, निषिद्ध, प्रायश्चित्त कर्म इत्यादि कई तरह के कर्मों को मान्यता प्रदान की है। मीमांसकों के अनुसार मोक्ष के लिए ज्ञान पर्याप्त नहीं है। उनका विश्वास है कि ज्ञानयुक्त कर्म से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। मीमांसा दर्शन मानवीय स्वतन्त्रता को मानता है, अन्यथा मनुष्य को अपने कर्मों के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। कर्म विधान का तात्पर्य यदि ठीक समझ लिया जाय तो मानवीय स्वतन्त्रता के साथ इसकी असंगति नहीं है।[18]

भारतीय दर्शन में मुख्य रूप से दो तरह के कर्म माने गये हैं– अनारब्ध और प्रारब्ध। अनारब्ध कर्म उसे कहते हैं जिसका अभी फल मिलना आरम्भ नहीं हुआ है। अनारब्ध कर्म भी दो तरह के होते हैं– संचित और क्रियमाण। विगत जीवन में किये गये कर्मों को संचित कर्म कहा जाता है और वर्तमान जीवन में किये जा रहे कर्म क्रियमाण। प्रारब्ध–कर्म का मतलब वह आरब्ध कर्म होता है जिसका फल मिलना आरम्भ हो चुका है। इन कर्मों के फलस्वरूप व्यक्ति को शरीर एवं अन्य वस्तुएँ प्राप्त होने लगती है। इसके परिणाम भोग लेने के पश्चात् ही व्यक्ति को मुक्ति मिल सकती है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि मीमांसकों की दृष्टि में नित्य, नैमित्तिक एवं निष्काम कर्म से व्यक्ति बन्धन में नहीं पड़ते हैं, इसलिए इसका त्याग नहीं होना चाहिए। अब स्पष्ट है कि पूर्वजन्म के संस्कार के फलस्वरूप मनुष्य बन्धन में पड़ता है। पूजा, हवन, रीति–रिवाज आदि का पालन करने से पूर्व संस्कार नष्ट हो जाते हैं, आत्मा फिर पुनर्जन्म या जन्म–मरण के चक्कर में नहीं पड़ती है।

जहाँ तक मीमांसकों के पुनर्जन्म अथवा कर्म–सिद्धान्त के औचित्य एवं अनौचित्य का प्रश्न है, इसके सम्बन्ध में डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा है कि–[19] 'वेदान्त यान्त्रिक क्रियाकलाप (कर्मकाण्ड) का विरोध उसी भावना को लेकर करता है, जिस भावना से ईसामसीह ने पापियों का विरोध किया और लूथर ने कर्मों द्वारा औचित्य निर्णय के सिद्धान्त का विरोध किया। हम चाहे कितने ही यज्ञ क्यों न करें, फिर भी हो सकता है कि वे आन्तरिक भावना में कोई भी परिवर्तन न ला सके। यदि पुण्य अथवा धर्म से तात्पर्य नैतिक सुधार अथवा सूक्ष्म परिवर्तन से है तो कर्मकाण्ड सम्बन्धी यज्ञ नहीं बल्कि स्वार्थ का त्याग आवश्यक है।' इसीलिये निष्काम कर्म करने की बात बतलाई गई है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसकी (निष्काम कर्म की) विशद् विवेचना की गई है। वेदान्त मत में इस शब्द का यौगिक अर्थ– वेद का अन्त। यह वेद के अन्तिम अध्यायों में प्रतिपादित किया गया सिद्धान्त है। डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में[20] 'वेदान्त' शब्द का यौगिक अर्थ है– वेदका अन्त, अथवा वे सिद्धान्त जो वेदों के अन्तिम अध्यायों में प्रतिपादित किए गए हैं और वे ही उपनिषदें हैं। उपनिषदों के विचार भी वही हैं जो वेद का अन्तिम लक्ष्य अथवा वेदों का सार है। वेदान्त सूत्र का दूसरा नाम ब्रह्मसूत्र भी है, क्योंकि यह ब्रह्म–सम्बन्धी सिद्धान्त की व्याख्या है और शारीरक सूत्र भी इसी का एक अन्य नाम है, इसीलिए यह निरुपाधिक आत्मा की अभिव्यक्ति के विषय में प्रतिपादन करता है।' किन्तु यहाँ भी पुनर्जन्म के विचार दृष्टिगत होते हैं। यानी उपनिषदों में भी बताया गया है कि जब शरीर क्षीण हो जाता हैतो आत्मा उसे छोड़कर नवीन शरीर धारण कर लेती है। एक जगह पुनर्जन्म की व्याख्या उपमा की सहायता से की गई है– अन्न की तरह भ्रमणशील प्राणें उत्पन्न होते हैं और उसी तरह मिट्टी में मिल जाते हैं, फिर उत्पन्न होते हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् में बताया गया है कि 'मृत्यु के बाद मनुष्य की रोशनी (आंख की) सूर्यमें, साँस वायु में, वाणी अग्नि में, मन चन्द्रमा में, शब्द दिशाओं में, शरीर पृथ्वी में, जीव आकाश में, केश पौधों और वृक्षों में और रक्त जल में चला जाता है।'

अब प्रश्न उठता है कि व्यक्ति का फिर रह क्या जाता है? उपनिषदों की दृष्टि में रह जाता है उसका कर्म। शुभ–कर्म से वह शुभ और अशुभ कर्म से अशुभ फल भोगता है। यहाँ यह भी बताया गया है कि व्यक्ति कर्मानुसार ही योनि ग्रहण करता है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि वह पुनः मनुष्य–योनि में ही जन्म ले। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के अनुसार–[21] 'गीता में, वेदान्त सूत्रों में और उपनिषदों में स्पष्ट कहा है, कि यह कर्म लिंग–शरीर के आश्रम अर्थात् आधार से रहा करता है और जब आत्मा स्थूल देह को छोड़कर जाने लगता है, तब यह कर्म भी लिंग–शरीर द्वारा उसके साथ जाकर उसको बार–बार भिन्न–भिन्न जन्म लेने के लिए बाध्य करता है।' तिलक की दृष्टि में माया, नामरूप और कर्म एक स्वरूप ही है। अतः लिंग–शरीर और कर्म इन दोनों का भी विचार करना पड़ता है। अतः श्रीमद्भगवद्गीता में भी पुनर्जन्म एवं कर्म–सिद्धान्त की सत्यता सिद्ध की गई है। इसकी सत्यता का जीता–जागता उदाहरण है :–

'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।'[22]

वस्तुतः चार्वाक् को छोड़कर अन्य सभी भारतीय दार्शनिकों ने अपने–अपने ढंग से कर्म–सिद्धान्त और पुनर्जन्म का समर्थन किया है। बौद्धों का कहना है कि जिस प्रकार एक दीपक से दूसरा दीपक जल उठता है उसी प्रकार एक जीवन–ज्योति से दूसरी जीवन–ज्योति जल उठती है। एक जीवन की अन्तिम सांस दूसरे जीवन की प्रारम्भिक सांस बन जाती है। मनुष्य अपने कर्मों के आधार पर ही पुनः मनुष्य, पशु या पौधों आदि की

योनि में जन्म ले सकता है। संसारावस्था में जो विभिन्न गति होती है, वह स्वाभाविक गति नहीं है। जीव की संसारावस्था में अधोगति, तिर्यग्गति एवं ऊर्ध्वगति का कारण कर्मजनित है। सम्पूर्ण कर्म से रहित जीव की केवल एक स्वाभाविक ऊर्ध्वगति ही होती है।

न्याय–वैशेषिकों में भी उपर्युक्त बातों की पुष्टि की गई है। इन्होंने युक्तियों की सहायता लेते हुए बताया है कि कोई नवजात शिशु जन्म लेते ही हँसने या रोने लगता है तो यह स्वभावतः प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों करता है? या ऐसा क्यों होता है? न्याय एवं वैशेषिकों के अनुसार पूर्वजन्म में निश्चय ही उसने सुख–दुःख का अनुभव किया है, इसीलिए वह जन्म लेते ही हँसना या रोना शुरू कर देता है। हँसना सुख का द्योतक है और रोना दुःख का। जब पूर्वजन्म सत्य है तो पुनर्जन्म सिद्ध ही है।

न्याय–वैशेषिक दर्शन में एक और युक्ति का सहारा लिया गया है– विश्व में कुछ व्यक्ति दुःखी है तो कुछ सुखी। अच्छे या शुभ कर्म करने वाले व्यक्ति कभी–कभी दुःख झेलते दीख पड़ते हैं और बुरे कर्म करने वाले सुख भोगते हैं। नैयायिकों की दृष्टि में व्यक्ति अपने पूर्व जन्म में किये गये कर्मों का फल इस जीवन में भोग रहा है। इसीलिए सज्जन दुःख झेलते हैं और दुर्जन सुख भोगते हैं। यह पूर्व की कमाई ही है। इस तरह पुनर्जन्म अथवा पूर्वजन्म की बातें अथवा कर्म–सिद्धान्त की बातें सिद्ध हो जाती हैं। वर्तमान–जीवन अतीत–जीवन का परिणाम है और भावी – जीवन वर्तमान–जीवन से निर्धारित होता है। उपर्युक्त बातों से सिद्ध हो जाता है कि वर्तमान–जीवन का भावी–जीवन के रूप में प्रतिबिम्बित होना स्वाभाविक है।

अन्य दार्शनिकों की तरह सांख्य एवं योग दर्शन के संस्थापक तथा उसके मतावलम्बियों ने भी पुनर्जन्म और कर्म–सिद्धान्त का समर्थन किया है। इनके मुताबिक शरीर दो तरह के होते हैं– स्थूल–शरीर एवं सूक्ष्म–शरीर। पंचभूतों से बने शरीर को स्थूल शरीर कहा जाता है। यह शरीर सब को दृष्टिगत होता है। यानी इसका इन्द्रियानुभव होता है। सूक्ष्म–शरीर का बोध तो होता है किन्तु हर किसी के लिए बोधगम्य नहीं है। इसका बोध मुनियों एवं ऋषियों को ही सम्भव हो सका है। आज भी कुछ ही चिन्तक इसकी सत्यता को स्वीकार कर पाते हैं। इसका इन्द्रियानुभव नहीं हो पाता है। यह सूक्ष्म तन्मात्राओं, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों एवं अन्तःकरण (बुद्धि, अहंकार और मन) से निर्मित होता है। सांख्य एवं योग दर्शन का कहना है कि स्थूल शरीर के नष्ट होने पर सूक्ष्म शरीर नष्ट नहीं होता है। यानी वह बचा रह जाता है। स्थूल–शरीर के विनाश और सूक्ष्म शरीर के पुनर्जन्म के बीच की स्थिति को 'अधिष्ठान–शरीर' कहा जाता है। इससे पुनर्जन्म–सिद्धान्त की सम्पुष्टि हो जाती है। सूक्ष्म शरीर ही अन्य शरीर को धारण करता है। जहाँ अन्य भारतीय दार्शनिकों का मानना है कि आत्मा का ही पुनर्जन्म होता है वहाँ सांख्य एवं योग दर्शन का कहना है कि आत्मा अथवा पुरुष जन्म नहीं लेता बल्कि सूक्ष्म शरीर ही जन्म लेता है।

इस तरह हम देखते हैं कि सांख्य और योगशास्त्र अन्य भारतीय दर्शन से भिन्न है। इनका मानना है कि शरीर धारण करना या जन्म लेना पुरुष का गुण नहीं बल्कि सूक्ष्म–शरीर का गुण है। उत्तरमीमांसा अथवा वेदान्त मत भी एक नही हैं।

अद्वैत–वेदान्त मत के प्रवर्तक श्री शंकराचार्य जी हैं। इनके अनुसार अज्ञान या अविद्या ही पुनर्जन्म का कारण है। व्यक्ति जब तक अज्ञानवश सोचता है कि आत्मा ब्रह्म से भिन्न है तब तक वह पुनर्जन्म के चक्कर में फँसा रहता है। इन्होंने भी सांख्य योग की तरह ही माना है कि अज्ञान की विशेष शक्तियों के कारण ही यह

क्रिया होती है। इन शक्तियों को सत्व, रजस एवं तमस प्रकार का त्रिविध धर्म कहा गया है। शुद्ध चौतन्य को अधिष्ठान मानकर तमः प्रधान अविद्या से सम्बन्ध आवरण–शक्ति द्वारा प्रथम आकाश की उत्पति हुई है, आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल एवं जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। अपनी सूक्ष्म एवं अभौतिक अवस्थाओं में ये तत्त्व ही सांख्य एवं पुराणों की दृष्टि में तन्मात्रा है। इन्हीं तत्त्वों से स्थूल पदार्थों के साथ साथ सूक्ष्म–शरीरों का विकास हुआ है। इस तरह माया या अज्ञान के वशीभूत होकर व्यक्ति बार–बार जन्म–मरण के चक्कर में फँसता है। इस तरह हम देखते हैं कि अद्वैत वेदान्तियों ने भी अपने ढंग से पुनर्जन्म एवं कर्म–सिद्धान्त की पुष्टि की है।[23]

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के प्रवर्त्तक श्रीरामानुजाचार्य जी हैं। इन्होनें भी अपने ढंग से पुनर्जन्म एवं कर्म–सिद्धान्त की सम्पुष्टि की है। इनका कहना है कि जीव सुख भोगने की कामना से इतना प्रभावित रहता है कि उसे बार–बार जन्म लेना पड़ता है। व्यक्ति को सुख की कामनाएँ अथवा इच्छाएँ इस जीवन में पूरी नहीं हो पाती है, इसलिए उसे बार–बार जन्म लेना पड़ता है। यों कहा जाये कि उसे अन्य जन्मों को धारण करना पड़ता है। अन्य योनि या अन्य शरीर को प्राप्त कर वह अपनी पूर्व इच्छाओं की पूर्ति करता है। रामानुज की दृष्टि में जीवात्मा दो तरह के होते हैं।

डॉ. राधाकृष्णन् ने उनके सिद्धान्तों की चर्चा करते हुए लिखा हैं– [24]'संसार के अन्दर जीवात्माओं के विभाग दो प्रकार के होते हैं– एक वे जो सुखोपभोग की इच्छा रखते हैं और दूसरे वे जो मोक्ष के इच्छुक हैं। जब तक जीवात्मा मोक्ष को प्राप्त नहीं कर लेता इसका पुनर्जन्म होना आवश्यक है, जिससे कि वह अपने कर्मों के फल का उपभोग कर सके।' संसार–चक्र में भ्रमण करते हुए जीवात्माओं के चार वर्ग हैं– आकाशीय अथवा अतिमानव, मानव, पशु और स्थावर। यद्यपि रामानुज की दृष्टि में सब जीवात्मा एक ही कोटि के हैं तो भी उनमें उन शरीरों के कारण भेद किये जाते हैं जो उन्हें दिये गये हैं। अथवा कर्मानुसार प्राप्त हुए हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि अन्य दार्शनिकों की तरह रामानुज ने भी पुनर्जन्म एवं कर्म–सिद्धान्त की सम्पुष्टि अपने ढंग से की है। यह दूसरी बात है कि जहाँ अन्य भारतीय दार्शनिकों ने ज्ञान अथवा कर्म को अधिक महत्त्वपूर्ण बताया है, वहाँ रामानुज ने भक्ति की सत्ता स्वीकार की है। दरअसल आस्तिक होने के कारण रामानुज का विश्वास है कि मोक्ष ज्ञान और कर्म के द्वारा नहीं, वरन् भक्ति और ईश्वर प्रसाद के द्वारा संभव है।[25] वेंकटनाथ ने भी इस बात की सम्पुष्टि की है। इनका प्रभाव भारतीय जनमानस पर इतना अधिक पड़ा कि इनके गुजरने के बाद भक्तों का तांता लग गया। भक्त कवियों की कृतियों से युग की धारा ही बदल गई। एक खास समय तक भक्ति–युग का समय माना जाता है। श्रीरामानन्द स्वामी, कबीरदास, गोस्वामी तुलसीदास, रविदास, मीरा, सुरदास आदि ने भारतीय जनमानस को ही नहीं बल्कि विश्व–मानव को प्रभावित कर दिया, जिसके चलते आज भी उनकी आवश्यकता महसूस की जा रही है। यह सब रामानुज के कारण ही संभव हो सका है। इन्होंने भी पुनर्जन्म एवं कर्म–सिद्धान्त को स्वीकार किया है। सिख धर्म के प्रवर्त्तक नानक एवं उनके अनुयायियों ने भी इस बात की पुष्टि की है। डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में [26]'नानक और उनके अनुयायी कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं। इनकी दृष्टि में संसार–त्याग करना और संन्यासी बन जाना आवश्यक नहीं है। शक्ति के द्वारा ईश्वर से एकत्व अनुभव करके संसार के आवागमन के चक्र से अपने को मुक्त कर सकते हैं।'

आधुनिक भारतीय में रवीन्द्र नाथ ठाकुर, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द घोष, चैतन्य महाप्रभु, दयानन्द

सरस्वती, महात्मा गाँधी, डॉ. राधाकृष्णन् आदि समकालीन भारतीय चिन्तको ने भी पुनर्जन्म एवं कर्म–सिद्धान्त में अपनी आस्था व्यक्त की है।

यह ठीक है कि कुछ आलोचकों ने पुनर्जन्म एवं कर्म–सिद्धान्त की आलोचना की है। पुनर्जन्म को काल्पनिक, भ्रान्ति पूर्ण, वंश–परम्परा के विरुद्ध बताया है। इतना ही नहीं इससे भाग्यवादी होने का भय भी बना रहता है। किन्तु गम्भीरता से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह न वंश–परम्परा के विरुद्ध है, न कि काल्पनिक और न ही भ्रान्तिपूर्ण। भाग्यवादी बनकर निष्क्रिय होने की बात भी उचित नहीं है। इस सिद्धान्त में आस्था रखने वालों ने तो जीवन भर प्रयास किया है और अन्य जन्मों में भी कर्म करने की भावना जागृत करने में सहयोग प्रदान किया है। नैतिक मूल्यों की रक्षा एवं उदात्त–भावना से जोड़ने का काम किया है। अतः यह सिद्धान्त निराशावाद का नहीं बल्कि आशावाद का प्रसार करता है।

वस्तुतः जिस कर्म से मनुष्य को आनन्द प्राप्त होता है और जनकल्याण संभव हो पाता है एवं जिसे करने की इच्छा स्वयं ही होती है वह पुरुषार्थ है। सुख या आनन्द का साधन कर्म से पृथक नहीं है। अतः परम पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिये कार्यरत रहना चाहिये इसीलिये भगवद्गीता में कहा गया है–

'प्रयत्नाच्युतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्विषः।
अनेक जन्म संसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।।'[28]

अर्थात् सत्कर्म के द्वारा परम श्रेय की प्राप्ति होती रहती है और होती रहेगी। बौद्ध और जैन धर्म एवं दर्शन की तरह ही हिन्दू धर्म एवं दर्शन में भी बतलाया गया है कि सत्कर्म के द्वारा परम शान्ति की प्राप्ति होती है तथा बुरे कर्मों के द्वारा अधोगति को प्राप्त करता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है कि नरक के तीन ही द्वार हैं :–

'त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनामात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।'[28]

इसीलिये आगे बताया गया है–

'एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमो द्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्।।'[29]

अर्थात् काम, क्रोध और लोभ (निषिद्ध–कर्म) से मुक्त होकर नित्य और नैमित्तिक कर्म के द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। यानी सत्कर्म के द्वारा ही स्वर्ग अथवा ईश्वर अथवा मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। ऋग्वेद में भी कहा गया है कि सर्वशक्तिमान ईश्वर से कौन नहीं मांगता? ईश्वर की शरण में जाने से साधक की दृष्टि ईश्वर की कृपा की तरफ हो जाने से उसके करने के लिए कुछ बाँकी नहीं रहता है। ईश्वर जीव–मात्र को अपना मित्र मानते हैं और उन्हें स्वतंत्रता देते हैं कि वे कर्मयोग, ज्ञानयोग, राजयोग, भक्तियोग आदि जितने भी साधन हैं, उनके द्वारा उसे प्राप्त कर सकते हैं। विभिन्न साधकों और ऋषियों की दृष्टि में भक्ति और प्रेम सबसे अधिक महत्त्व रखता है। प्रेम के द्वारा जनसाधारण भी उसे प्राप्त कर सकता हैं। क्योंकि वह सरल और सुगम है।

सन्दर्भ सूची :–

1. यजुर्वेद– 44/28

2. स्वामी दयानन्द सरस्वती एवं आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री, (भाषा भाष्यकर्ता). वेद, (यजुर्वेद, सामवेद) दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली, 1985 ई., पृष्ठ– 14
3. डॉ. राधाकृष्णन् (अनुवादक स्व. नन्द किशोर गोभिल), भारतीय दर्शन भाग–1. पृष्ठ– 7071
4. न्यायसूत्र – 4/1/19
5. पं. फूलचन्द्र शास्त्री (विवेचनकर्त्ता) तत्त्वार्थ–सूत्र, पृष्ठ– 285
6. डॉ. राधाकृष्णन् (अनु. स्व. नन्दकिशोर गोभिल), भारतीय दर्शन भाग–1, पृष्ठ– 406
7. डॉ. राधाकृष्णन् (अनु. स्व. नन्दकिशोर गोभिल). भारतीय दर्शन भाग–1. पृष्ठ– 406–7
8. श्री शंकराचार्य, (अनु. हरिकृष्णदास गोयन्दा). शांकरभाष्य श्रीमद्भगवद्गीता, पृष्ठ– 90
9. डॉ. राधाकृष्णन्, भारतीय दर्शन भाग– 2. पृष्ठ– 412
10. डॉ. देवराज, भारतीय संस्कृति, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, 1979 ई.. पृष्ठ– 155
11. श्री शंकराचार्य भाष्यकर्ता (अनुवादक हरिकृष्ण दास गोयन्दा), शांकर भाष्य श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर सं. 2041, भूमिका पृष्ठ– 4
12. श्री सतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय एवं धीरेन्द्र मोहन दत्त (अनुवादक झा एवं मिश्र), भारतीय दर्शन, पुस्तक भंडार पटना–4, 1960 ई., पृष्ठ– 212–13
13. भारतीय दर्शन, जन–जागरण प्रेस पटना, 1961 ई., पृष्ठ– 255
14. स्वामी दयानन्द सरस्वती एवं आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री (भाषा–भाष्यकर्ता), वेद (यजुर्वेद, सामवेद), दयानन्द संस्थान दिल्ली, 1970 ई., पृष्ठ– 3
15. सामवेद भाषा–भाष्य, पूर्वार्चिक, पृष्ठ– 11
16. डॉ. राधाकृष्णन् (अनुशी. गोभिल) भारतीय दर्शन भाग– 2, पृष्ठ– 412
17. डॉ. राधाकृष्णन् (अनुशी. गोभिल) भारतीय दर्शन भाग– 2, पृष्ठ– 414
18. डॉ. राधाकृष्णन् (अनुशी. गोभिल) भारतीय दर्शन भाग– 2, पृष्ठ– 423
19. डॉ. राधाकृष्णन् (अनुशी. गोभिल) भारतीय दर्शन भाग– 2, पृष्ठ– 430
20. डॉ. राधाकृष्णन् (अनुशी. गोभिल) भारतीय दर्शन भाग– 2, पृष्ठ– 435
21. लोकमान् बालगंगाधर तिलक, श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य (अनु. श्रीमान् माधवराव सग्रे), अथवा कर्मयोग शास्त्र, पूना– 41103, 1984 ई., पृष्ठ–264
22. श्रीमद्भगवद्गीता– 2/22
23. वेदान्तसार एवं सुबोधनी, पृष्ठ– 17 उद्धृत, एस. एन. दासगुप्त (अनु. वसावड़ा) भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग–2, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर–4 1974 ई., पृष्ठ–70
24. डॉ. राधाकृष्णन् (अनु. गोभिल), भारतीय दर्शन भाग–2, पृष्ठ–697
25. वही, पृष्ठ–704
26. डॉ. राधाकृष्णन् (अनुवादक उमापति राय चन्देल), हमारी संस्कृति, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1972 ई., पृष्ठ– 97
27. श्रीमद्भगवद्गीता– 6/45
28. श्रीमद्भगवद्गीता– 16/21
29. श्रीमद्भगवद्गीता– 16/22

Email – sudhirkumarjha887@gmail.com, Mob. 9931009071

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 91-95

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Yoga for Health, Happiness and Harmony : A Study

Dr. Avijit Mandal

Assistant Professor, Department of Sanskrit, Vivekananda College for Women
Barisha, Kolkata-700008.

ABSTRACT :-

Yoga is a 'way of life' and goes beyond the physical fitness or posture. Yoga in Indian traditions is more than physical exercise and has a meditative and spiritual core. Yoga makes our physical and spiritual life smooth. Medical researchers also approve the interrelated factor that when the physical body is in good health, the mind functions properly and tension is in controlled state. The breathing exercise performed in practicing yoga is a solution for stress and anxiety. Yoga shows us different ways of maintaining physical and mental health. In my research paper, I want to show that the importance of yoga for physical and mental health and relevance in the modern times.

Keywords :- Yoga, Modern life, Health, Happiness, Harmony.

Introduction :-

"Yoga does not just change the way we see things,
It transforms the person who sees." -B.K.S Iyengar.

This whole universe is the limitless embodiment of infinite number of mysteries. But never any incongruity takes place in its course because it has a definite rule since its creation that is never deviated. But many of the human being lack the knowledge of proper method of life. Every individual soul living inside every human being, possesses endless and innumerable power i.e 'Shakti' which can place him in the pick of success.

Yoga in Indian traditions is more than physical exercise and has a meditative and spiritual core. Yoga derived literally from the Sanskrit root "Yuj" means to add, to join, to attach or to unite is considered as any "practices" that helps facilitate a union between Self (Jivatma) and the Divine (Paramatma).As a complete exercise programme and physical therapy routine, the physical postures of yoga are used to alleviate health problems, reduce stress and make the spine supple in contemporary times beside the spiritual goals. There is no denial of the fact that now- a -days development of

science and technology has simplified our life a lot, but due to lack of proper rest, fast food habit, negative effect of environment and work style human being is suffering both mentally and physically. Though the modern life gives us more comfort, but rivets more things. Due to modern life style we are suffering from stress both physically and mentally and facing various fatal diseases.

Yoga is more relevant in modern stressful life. Yoga is a way of life. It is only way through which the body will be fit and fine without any trainer, without equipment and medicine. Swami Vivekananda proclaimed "Each soul is potentially divine". The goal is to manifest this divinity within, by controlling nature external and internal. Do this either work or worship. The practice of yoga asanas and meditation provides natural support to the immune system. So, yoga is more relevant in our daily life.

Yoga for Health and Well-being :-

Yoga is an ancient and comprehensive form of spiritual self discovery. Yoga exercises have a holistic effect and bring body, mind and conscious and soul into balance. Many thousands of years ago in India, Rishis explored nature and the cosmos in their meditation. They discovered the laws of the material and spiritual realms and gained an insight into the connection within the universe. They investigated the cosmic laws, the laws of nature and the elements, life on earth and the powers and energies at work in the universe, both in the external world as well as on a spiritual level. The unity of matter and energy, the origin of the universe and the effects of the elementary powers have been described and explained in the Veda. Much of this knowledge have been discovered and confirmed by modern science.

Yoga has numerous benefits if we look at it closely. You will get relief when you practice it regularly. It keeps away the ailments from our mind and body. In addition, when we practice several asanas and postures, it strengthens our body and gives us a feeling of well-being and healthiness. Yoga helps in sharpening our mind and improving our intelligence. We can achieve a higher level of concentration through yoga and also learn how to steady our emotions. In addition, you can develop self-discipline and self-awareness from yoga if practice regularly. You will gain a sense of power once you do it consistently and help you lead a healthy life.

Yoga teaches us the knowledge of how to lead a healthy living. It improves our concentration, creativity and sharpens our memory. In addition, yoga improves our muscle strength, stamina and brings immune and mental stability. Therefore, practice of yoga is significant in controlling health problems. Yoga is holistic which provides physical, mental, social and spiritual benefits. It helps to manage stress and anxiety and keeps mind relax. Regular practice of yoga can help lose weight, relieve stress, improve immunity and maintain a healthy life style.

Modern age is of science and technology. Then yoga refers to the science of health, happiness and harmony. Yoga has been much popular in modern times as the science and art of holistic living. People are attracting towards yoga as a holistic care system. Holistic approach of healthcare includes:-

1. Preventive health
2. Promotive health
3. Curative health.

Yoga for Happiness and Harmony :-

Yoga is a way of living that aims towards a healthy mind in a healthy body. Man is a physical, mental and spiritual being; yoga helps promote a balanced development of all the three. Other forms of physical exercises like aerobics, assure only physical well-being. They have little to do with the development of the spiritual or astral body.

Yoga is very useful in present times. Our country is now developing in the I.T. field and education structure is developing in a faster way. In the I.T. field person's brain is used heavily for hours due to which the mental stress increases and back pain also increases. Therefore, such reasons for immediate relief they go for tablets and have side effects which will bring them to the level of cancer also. Modern children have different challenges compared to previous generation. They are prone to spending a considerable amount of time in front of T.V or computer, listening to their I-pods or playing video game and as a result, they spend less time on physical activity. They suffer from insomnias, eating disorder, ADHD (Attention Deficit Hyper activity Disorder) and sometimes aggression. But yoga can solve or help all the problems seen present stage.

Yoga is most effective in controlling both stress and functional disorder. Practice of yoga develops a whole human system. Yogic asanas, mudras and pranayamas are the best means of serving the body and mind. They are good for relaxation of mind. A person's mental and physical health depends on brain and body chemicals. Yogic practice gives direct and tangible benefit to everyone regardless of their spiritual aims. Yoga has succeeded as an alternative form of therapy, diseases such as like Asthma, blood pressure, Arthritis, digestive disorders and other ailments of chrome and constitutional nature. According to medical scientists, yoga therapy is successful because of the balance created in the nervous and endocrine system which directly influences all the other systems and organs of the body.

Yoga helps to live in harmony with our environment; it helps us to give recognition for ourselves, the natural environment we are living and help us to peaceful interact with the society to which we belong. In maintaining the physical health it is essential to balance our diet. Yoga teaches as an ethical principle we have to be selective of the food we eat and focus on vegetable and we have to avoid meat,

alcohol, drugs and nicotine. Yoga is highly suggested for people in competitive, stressful working atmospheres which is characteristics of modern life.

Impact of Yoga in Human Life :-

Yogic exercises recharge the body with cosmic energy and facilitates :-

1. Attainment of perfect equilibrium and harmony.
2. Promotes self healing.
3. Removes negative blocks from the mind and toxins from the body.
4. Enhances personal power.
5. Yoga to live with greater awareness.
6. Helps in attention, focus and concentration.
7. Yoga for better relationships.

The aspirant feels rejuvenated and energized. Thus, yoga bestows upon every aspirant the powers to control body and mind. Here are the top five benefits of yoga :-

1. Relieves stress and depression.
2. Improved posture and flexibility.
3. Toning.
4. Improved sleep.
5. Better body image.

Therefore, we should do this for better and healthy living.

Conclusion :-

The art of practicing yoga helps in controlling an individual's mind, body and soul. It improves respiration, energy and vitality. The modern life style is complex and filled with tension. As a result, people in urban areas are busy with work schedules to fulfil what life demands survival. This life style brought stress to the individuals which leads to different types of diseases. Today yoga thoroughly globalized phenomenon; yoga has taken the world by storm and is gaining popularity day by day. In short, yoga suggests a number of ways to achieve a calm peaceful mind. Yoga is holistic which provide physical, psychological, social and spiritual benefits. So, let us all make it a habit to bring yoga to our day- to -day life. At last I say-We all wish for world peace, but peace will never be achieved unless we first establish peace within our own minds.

Bibliography :-

1. Adhia, H., Nagendra, H.R. & Mahadevan, B. (2010). Impact of Adoption of Yoga : Way of Life on the Emotional Intelligence of Managers, IIMB Management Review, 22(1-2), 32-41

2. Bhavani, A.B. (2011).Understanding the Science of Yoga, Int.Yoga Scientific. J. SENSE,1, 334-344
3. Baria, Farah(2000).Cures from the Past, India Today.
4. Eliade, M.(2009).Yoga: Immortality and Freedom, Princeton University Press
5. Tessema,T.A.(2017).Significance of Yoga in Modern Life, Significance, 2(5)
6. Yadav, S.K., Kumar, A., Kumar, V. &Kumar, A.(2015). Importance of Yoga in Daily Life, Research Gate, DOI, 10
7. Satipati,Vidyabhusan.(1347).Yog O Sadhana, Sulbhala Library: Kolkata
8. Yogindra,Svatmaram.(1933).Hatha Yoga Pradipika, Theosophical Publishing House: Madras
9. White, David Gordon(2011).Yoga: Brief History of an Idea, Princeton University Press.

Mobile: 9830976023
Email: avijitvcw2017@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 96-98

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महर्षि यास्क का संस्कृत भाषा चिंतन में योगदान

प्रतीक कुमार यादव

शोधार्थी, पीएच.डी (हिंदी), डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लोथियन मार्ग, कश्मीरी गेट, दिल्ली–110006.

महर्षि यास्क एक जलते हुए 'सूर्य' की तरह है जिन्होंने अपनी वेद विद्या को अमरकृति 'निरुक्त' एवम् 'निघंटु' के माध्यम से संसार के सम्मुख रखा।

एम.के. बेल्वलकर महर्षि यास्क को पाणिनि से 'सौ वर्ष' पूर्व मानते हैं और जैसा कि सर्वमान्य है कि 'पाणिनि' का काल 5वीं शताब्दी ईसा पूर्व है तो देखा जाएं 'महर्षि यास्क' का समय छठी शताब्दी ईसा पूर्व होगा।

महर्षि यास्क की प्रतिष्ठा एक निघंटुकार और ऋग्वेदीय शौनाक शाखा के पदपाठ के प्रवक्ता आचार्य निरुक्तकार के रूप में जगजाहिर है। वहीं व्याख्याकार दुर्गाचार्य अपने ग्रन्थ की व्याख्या में उनको निरुक्त श्रेणी में 'बिरला आचार्य' के रूप में माना है। आप यहाँ स्पष्ट तौर पर देख सकते हैं कि महर्षि यास्क की निरुक्त और निघंटु में अहम् भूमिका थी।

एक बात विचारणीय है कि महर्षि यास्क कृत 'निरुक्त' ही एक मात्र 'निरुक्त' नहीं है महर्षि यास्क से पूर्ववर्ती अनेक 'निरुक्त' एवं 'नैरुक्त' हुए। जिन्होंने महर्षि यास्क को गंभीर तौर पर प्रभावित किया।

महर्षि यास्क अपने ग्रन्थ 'निरुक्त' में सम्प्रदायों एवं आचार्यो का निष्पक्षता के साथ उल्लेख किया है। महर्षि यास्क उन्हें अमरता प्रदान करते हुए दिखते हैं।

अब हम यहाँ पर महर्षि यास्क की अमरकृति 'निरुक्त' एवम् 'निघंटु' के माध्यम से स्वरुप, उपयोगिता, प्रयोजन, सांस्कृतिक, मनोविज्ञानिक पक्ष आदि से महर्षि यास्क का संस्कृत भाषा चिंतन में योगदान को समझने का प्रयास करेंगे। किसी भी देशकाल में कोई भी भाषा क्यों न रही हो, उसमें शब्दों के अर्थ को लेकर समस्याएं हमेशा बनी रहीं क्योंकि समय के साथ भाषा बदलती है अर्थात बहुत से शब्द प्राचीन अर्थो को छोड़कर किसी नवीन अर्थों में प्रचलित होने लगते हैं। फिर आप देखेंगे कि एक समय ऐसा है जब वैदिक भाषा की अर्थवत्ता की सिद्धि के लिए 'एक सुव्यवस्थित शब्दकोश' की आवश्यकता आन पड़ी। वहीं देखेंगे कि निरुक्त परम्परा की शुरुआत के साथ विकास हुआ और महर्षि यास्क ने 'निरुक्त' ग्रन्थ लिखा, उसमें उन्होंने अपने पूर्ववर्ती बारह नौरुक्तों की चर्चा की है जिनके नाम आग्रायण, औपमन्यव, औदुम्बरायण, और्णावाभ, कात्थक्य, क्रौष्टुकि, गार्ग्य, गालव, तैटीकि, वाष्यायणि, शाकपूणि तथा स्थौलाष्ठीवि हैं।

अनुसन्धात्री 'आरती बरनवाल' अपने शोध–प्रबंध में महर्षि यास्क के श्लोक को लिखती है या यूं कि दोहराती है– "समाम्नायः समाम्नातः। स व्याख्यातव्यः। तमिन्म समाम्नायं निघण्टव इत्याचक्षते। निघण्टवः कस्मात्। निगमा इमे भवन्ति।"[1] अर्थात "वैदिक वाड्मय से चुन–चुन कर एकत्र किए गए पदों का संकलन निघंटु कहलाता

है।"[2] अगर मूल रूप से देखा जाएं तो यह कोशग्रन्थ रचना का प्रथम सोपान है। निरुक्त की तरह निघंटु भी संख्या में अधिक थे। आचार्यों ने निरुक्त की रचना के लिए अपने–अपने निघंटु लिखें होंगे।

महर्षि यास्क के द्वारा लिखित 'निघंटु' तीन खण्डों में विभाजित है। इसके प्रथम काण्ड का नाम 'नैघण्टुक काण्ड' है तथा यह तीन अध्यायों में विभक्त है। एक–एक पद के अर्थ जहाँ स्पष्टता से व्यक्त किए गए हो, उसे 'निरुक्त' कहते हैं।

आचार्य सायणाचार्य का इस सन्दर्भ में मत हैं कि "अर्थबोधे पदजातं यत्रोक्तं तत्रिरुक्तम्। अर्थात अर्थबोध के निमित्त जहाँ पदों को कहा गया है अर्थात संकलित किया गया है उसे 'निरुक्त' कहा जाता है।"[3]

वहीं एस.के. बेल्वलकर 'निरुक्त' के सन्दर्भ में कहते हैं कि "यह एक ऐसी कड़ी है जो प्रातिशाख्यों में दृष्ट विचारसरणि तथा अष्टाध्यायी में परिलक्षित सुव्यवस्थित, सुविचाररित शैली के माध्य संबंध स्थापित करती है। निरुक्तव्याकरण का पूरक है।"[4]

'निरुक्त' में कुछ चौदह अध्याय है। महर्षि यास्क 'निरुक्तशास्त्र' का सर्वप्रथम प्रयोजन मानते हुए कहते हैं कि 'निरुक्त' मंत्र ज्ञान अथवा अर्थज्ञान के लिए उपयोगी और सहायक है और आगे कहते हैं कि 'निरुक्त' शास्त्र व्याकरण को पूर्ण करता है और अपने स्वतंत्र अर्थ का साधक है। अज्ञानतावश निंदा पात्र बनने से बचने के लिए भी 'निरुक्त' अनिवार्यता पढ़ना चाहिए और निरुक्त की व्यापकता असीमित है।

महर्षि यास्क ने 'निरुक्त' के पदों का वर्गीकरण भी किया। आख्यात को लेकर महर्षि यास्क ने कहा कि 'भावप्रधान–माख्यातम्'। अर्थात जो भाव प्रधान हो या भाव की प्रधानता हो, वह आख्यात कहलाता है। जो क्रियावाची है वही आख्यात नाम से 'निरुक्त' में व्यवहत किया।

महर्षि यास्क ने नाम के सन्दर्भ में कहा कि 'सत्वप्रधानानि नामानि' अर्थात जहाँ सत्व की प्रधानता दिखें, उसे नाम कहते हैं। स्पष्ट तौर पर देखें तो सार्वनामिक पदों द्वारा जिसका उपदेश किया जा सके और उन्होंने द्रव्य रूप हुए भाव को भी सत्व की संज्ञा से अभिहित माना है। नाम को लेकर नौं बातों को आधार मानते हैं– निवास, कर्म अथवा क्रिया, रूप, मंडल, बोली, आशीष, स्वेच्छा, आदत। उपसर्ग का वैदिक संहिताओं में आज के अर्थ से भिन्न अर्थ है। वैदिक संहिताओं में 'उप' का अर्थ समीप और 'सृज' का अर्थ रचना, बनाना प्रयोग हुआ है। आचार्य शाकटायन 'उपसर्ग' को लेकर कहते हैं कि वे शब्दांश है जिसका स्वयं कोई अर्थ नहीं होता। किन्तु ये नाम और आख्यात के साथ युक्त होकर अर्थ विशेष के साथ लगते हैं। आचार्य शाकटायन 'दो बातों' की तरफ और ध्यान केन्द्रित करते हैं।

1. उपसर्गों का नाम और आख्यान पदों के साथ ही प्रयोग होता है, स्वतंत्र नहीं।
2. उपसर्गों का अपना कोई अर्थ नहीं है। इनके लगने से नाम और आख्यातों के अर्थ में ही विशेषता आ जाती है अर्थात नाम और आख्यातों के अर्थ में ही विशेषता ला देना, उनके अर्थ को उत्पन्न करना इनका कार्य है।निपात को लेकर पं. शिवनारायण शास्त्री का मत है कि "निपात शब्द नि+पत+घय से निष्पन्न है, अनेक प्रकार के अर्थो में प्रयुक्त होने के कारण कुछ शब्द निपात कहलाते हैं।"[5]

महर्षि यास्क ने कहा कि वे पद निपात है जो कभी उपमा के अर्थ में, कभी अर्थ में, कभी पदपूरण के लिए वाक्य में आवश्यकतानुसार प्रयोग किये जाते हैं।

आप प्राचीन काल में देखेंगे कि मानव जीवन में भाषा के महत्त्व को लेकर, तत्वों का अध्ययन आदि को

लेकर ऋषियों–मुनियों के द्वारा चिंतन–मनन होता रहा है।

भाषा में सम्प्रेषण का मूल माध्यम शब्द होते हैं तथा शब्दों की एक व्यवस्थित क्रिया से 'भाषा' है।

प्राचीन काल में भाषा को समझने के लिए और शब्दों की महत्त्वता को जानने के लिए शब्दों को अध्ययन का विषय बनाया गया।

डॉ. भोलानाथ तिवारी 'निरुक्त' में भाषा वैज्ञानिक तथ्य के सन्दर्भ में कहते हैं कि–

(1) इसमें निघंटु के शब्दों को लेकर उनका अर्थ समझने का प्रयास है। साथ ही प्रयोग एवं अर्थ की स्पष्टता के लिए वैदिक संहिताओं के शब्दों के प्रयोग भी दे दिए गए है।

(2) निरुक्त में अनेक पूर्ववर्ती तथा समवर्ती व्याकरण सम्प्रदायों एवं वैयाकरण के नाम एवं उद्धरण दिए गए हैं जिनके उस समय तक के भाषा संबंधी अध्ययन के प्रचार एवं अभिरुचि पर प्रकाश पड़ता है।"[6]

संसार के किसी भी विषय पर कोई भी शास्त्र क्यों न हो, उसमें लेखक के व्यक्तिगत अनुभव और तत्कालीन समाज का स्वरुप दिखता है। जब आप शास्त्र के छोटी–छोटी झलकियों का विस्तार विश्लेषण करेंगे तो खानपान, रीतिरिवाज, परम्पराएं, समाजिक, राजनैतिक, आर्थिक स्थिति के दर्शन होते है। वहीं आप देखेंगे कि महर्षि यास्क ने 'निरुक्त' में स्थान–स्थान पर कुछ संकेत छोड़े है जिनसे आप समाज की एक धुंधली सी झलक पा सकते हैं जैसे कि जल की उपलब्धता वृष्टि जल के अतिरिक्त नदियों से होती थी।

समाज में मार–काट का वातावरण था तथा दूसरों की हिंसा कर देना समाज के कुछ लोगों के लिए रूचि का विषय था। धनी वर्ग धन के बल पर अपराध करके भी छूट जाता था आदि।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि महर्षि यास्क का संस्कृत भाषा चिंतन में श्रेष्ठ और अप्रतिम योगदान है। प्रो. रूप किशोर शास्त्री प्रमाण के तौर पर कहते हैं कि महर्षि यास्क के संबंध में– "उन्होंने अपने पूर्ववर्ती घटनाओं, राजाओं एवं विभिन्न विद्या प्रवर्तक आचार्यों व ऋषियों का उल्लेख कर वैदिक– चिंतन को व्यापक एवम् आधारभूत आयाम प्रदान किया है।"[7] अंततः मैं यही कहूँगा कि उनके अभूतपूर्व योगदान से आज समूचा संसार उनका हृदय से आभारी एवम् ऋणी है।

सन्दर्भ सूची :-

1. लेख– निघंटु तथा निरुक्त के विकास में देवराज यज्वा का योगदान, आरती बरनवाल, लखनऊ, पृष्ठ सं.1, 2.
2. वही पृष्ठ सं. 2.
3. वही पृष्ठ सं. 11.
4. लेख, डॉ काशीराम शर्मा, हंसराज कॉलेज, पृष्ठ सं. 13.
5. लेख– निघंटु तथा निरुक्त के विकास में देवराज यज्वा का योगदान, आरती बरनवाल, लखनऊ, पृष्ठ सं. 67.
6. वहीं, पृष्ठ सं. 100.
7. लेख– आचार्य यास्क के पूर्वकालिक निरुक्तकार एवं उनकी निवर्जन विद्या के प्रतिमान तथा भाषाविज्ञानिक समीक्षा, प्रो. रूप किशोर शास्त्री, पृष्ठ सं. 1.

मोबाइल नं.–9650740828.

मेल आईडी– Prateeksurya.kumar6@gmail.com

डाक पता– 245/54ए, गली नं.–4 पूर्वी स्कूल ब्लॉक मंडावली फाजलपुर, दिल्ली– 110092.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha
July 2023

ISSN : 2395-7115
Page No. : 99-101

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शिव पुराण के अनुसार 'प्रणव' रूपी शिव तत्व का वर्णन

वीणा प्रसाद

शोधार्थी, एम.ए., संस्कृत एवं ज्योतिर्विज्ञान, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

भारतीय धार्मिक साहित्य में वेदों से लेकर पुराणों एवं स्मृतियों तक में 'प्रणव' की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। 'प्रणव' अर्थात् प्रकृति से उत्पन्न संसार–सागर रूपी महासागर को पार करने के लिये ओमकार 'नव' नौकास्वरुप है, अतः विद्वानों ने इस ओमकार की 'प्रणव' संज्ञा की है। ओमकार अपने जप करने वाले साधकों से कहता है– 'प्र' अर्थात् प्रपंच, 'न' अर्थात् नहीं है, 'व' अर्थात् तुम लोगों के लिये। अर्थात् आत्मा में कुछ भी प्रपंच नहीं है। अतः इस भाव को लेकर भी ज्ञानी जन ओमकार को प्रणव नाम से जानते हैं। इसकी दूसरी अवधारणा कुछ इस प्रकार है– 'प्र'– प्रकर्षेण, 'न'– नयेत् , 'वः'– युष्मान् मोक्षम् इति वा प्रणवः। अर्थात् यह तुम सब उपासकों को बलपूर्वक मोक्ष तक पहुचा देगा।

प्रपंचों न नास्ति वो युष्माकं प्रणवं विदुः।
प्रकर्षेण नयेद्यस्मान्मोक्षं वः प्रणवं विदुः।। वि.स.17/5

प्रणव के दो भेद स्वीकार किये गये हैं– स्थूल और सूक्ष्म। एकाक्षर जो ओम है उसे सूक्ष्म प्रणव कहा गया है। इसमें पांचो अक्षर स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं है जबकि स्थूल प्रणव में पांचो अक्षर (नमः शिवाय) सुस्पष्ट रूप से व्यक्त है।

प्रणवं द्विविधं प्रोक्तं सूक्ष्मस्थूलविभेदतः।। वि.स.17/8

जीवन मुक्त मनुष्य के लिये सूक्ष्म प्रणव के जप का विधान है। वही उसके लिये समस्त साधनों का सार है। वह अपनी देह का विलय होने तक सूक्ष्म प्रणव मन्त्र का जप और उसके परमात्म तत्त्व का अनुसन्धान करता रहता है। जब देह नष्ट हो जाता है, तब वह पूर्ण ब्रह्म स्वरुप शिव को प्राप्त कर लेता है।

जीवन्मुक्तस्य सूक्ष्मं हि सर्वसारं हितस्य हि।
मन्त्रेणार्थानुसन्धानं स्वदेहविलायाविधि।। वि. सं. 17/10

सूक्ष्म प्रणव के भी ह्रस्व और दीर्घ के दो भेद हैं। अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद, शब्द, काल और कला इनसे युक्त प्रणव को दीर्घ प्रणव कहते हैं वह योगियों के ही हृदय में विराजमान होता है।

अकारश्च उकारश्च मकारश्च ततः परम्।
बिन्दुनादयुतं तद्धि शब्दकालकलान्वितम्।। वि.स.17/13
दीर्घप्रणवमेवं हि योगिनामेव हृदगतम्।
मकारं तन्त्रितत्वं हि ह्रस्वप्रणव उच्यते।। वि.स.17/14

शिवः शक्तिसतयोरैक्यं मकारं तु त्रिकात्मकम्।। वि.स.17/15

मकार पर्यंत जो ओम है, वह अ, उ, म – इन तीन तत्त्वों से युक्त है। इसी को ह्रस्व प्रणव कहते हैं। 'अ' शिव है, 'उ' शक्ति है और मकार इन दोनों की एकता है। शिव पुराण की कैलाश संहिता में शिव को ही प्रणव और प्रणव को ही शिव स्वरुप माना है, क्योकि वाच्य–वाचक में कुछ भी भेद नहीं होता है। इसीलिए वाच्य तथा वाचक में एकता मानते हुए ऋषिगणों ने उन्हें एकाक्षर देव कहा है।

शिवो वा प्रणवो ह्येष प्रणवो वा शिवः स्मृतः।
वाच्यवाचकयोरभेदो नात्यंत विद्यते यतः।। कै.स. 3/7
तस्मादेकाक्षर देवं मा च ब्रहमर्षयोः विदुः।
वाच्यवाचकयोरैक्य मन्यमाना विपश्चित्तः।। कै.स.3/8

अ, उ, म ये तीन मात्राएँ और बिन्दु, नाद इनके सम्पृक्त रूप–वर्ण पंचांग को प्रणव कहा गया है। ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त समस्त प्राणियों का प्राण होने के कारण भी इसको प्रणव कहते है। ओम का वर्णन करते हुए कहा गया है कि आद्य वर्ण अकार है उसके पश्चात् क्रमशः उकार एवं मकार है और सबसे अन्त में नाद है। अकार, उकार, मकार ये तीन मात्राएँ क्रम से हैं तथा उनके बाद अर्धमात्रा बिन्दु–नाद स्वरुप है।

आद्यं वर्णमकारं च उकारमुत्तरे ततः।
मकारं मध्यतश्चैव नादान्तं तस्य चोमिति।। कै.स.3/15
अकारश्चाप्युकारोऽयं मकारश्च त्रयं क्रमात्
तिस्त्रो मात्राः समाख्याता अर्धमात्रा ततः परम्।। कै.स.3/17

प्रणव की अकार, उकार, मकार तथा नाद ये चार मात्राएँ वेद में भी दृष्टिगत हैं। जबकि समूह के रूप में ओंकार ब्रह्म महेश्वर का वाचक है। शिवपुराण की कैलाश संहिता में कहा गया है कि अकार के रजोगुण युक्त ब्रह्मा, उकार के सतोगुण से हरि तथा मकार के तमोगुण से युक्त संहारक शिव उत्पन्न हु।

अकरास्तु महद बीजं रजः स्रषटा चतुर्मुखः।
उकारः तिर्योनिः सत्त्वं पालयिता हरिः।। कै.स.3/21
मकारः पुरुषो बीजी तमः संहारको हरः।। कै.स.3/22

शिव पुराण की विद्येश्वर संहिता के दशम अध्याय में भगवान् शिव का कथन है कि महामंगलकारी मन्त्र ओमकार सर्वप्रथम मेरे ही श्रीमुख से प्रकट हुआ, जो मेरे स्वरुप का बोध करने वाला है। ओमकार वाचक है और मैं वाच्य हूँ। मेरे उत्तरवर्ती मुख से अकार का, पश्चिम मुख से उकार का, दक्षिण मुख से मकार, पूर्ववर्ती मुख से बिन्दु तथा मध्यवर्ती मुख से नाद का उद्भव हुआ। इन सभी अवयवों से एकीभूत होकर वह 'प्रणव' ओम नामक एक अक्षर हो गया। इसी से पञ्चाक्षर मन्त्र 'नमः शिवाय' की उत्पत्ति हुई, जो मेरे समग्र रूप का बोधक है।

वाचकोयमहं वाच्यो मन्त्रोयं हि मदात्मकः।
तद्नुस्मरण नित्यं ममानुस्मरण भवेत्।। वि.स.10/17
अकार उत्तरात पूर्वमुकारः पश्चिमाननात।
मकारो दक्षिणमुखाद् बिन्दुः प्रांगमुखतस्तथा।। वि.स.10/18

यह शिव का विधि– वाक्य है, अर्थवाद मात्र नहीं है। यह भगवान् का स्वरुप है जो अनादि सर्वग्य परिपूर्ण

और स्वभाव से निर्मल है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. शिवपुराण – गीता प्रेस गोरखपुर (दो खण्ड)
2. विद्येश्वर संहिता अध्याय– 17/5
3. विद्येश्वर संहिता अध्याय – 17/8/10
4. विद्येश्वर संहिता अध्याय– 17/13–15
5. कैलाश संहिता अध्याय– 3/7–8
6. कैलाश संहिता अध्याय– 3/15–17
7. कैलाश संहिता अध्याय – 3/21–22
8. विद्येश्वर संहिता अध्याय– 10/17–18

मो. न. 7905063617

इमेल–veenadidi33@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 102-104

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

चरक संहिता में गर्भाधान संस्कार

अंजली प्रसाद

शोध छात्रा, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, आगरा।

वैदिक साहित्य का प्रारम्भ वेदों से होता है वेद चार है जिनमें ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है। आयुर्वेद की परम्परा का प्रारम्भ ब्रह्मा से होता है जो स्वयम्भू है अर्थात् जिसकी उत्पत्ति स्वयं ही हुई हो इसलिए यह आयुर्वेद भी शाश्वत होने से उसी के साथ पैदा हुआ। ब्रह्मा–चारों वेदों के उद्गाता – सृष्टिस्थ समस्त स्वरूपीय ज्ञान के उद्गाता ब्रह्म देव ऐतिहासिक महापुरुष है– ऐसा मान लेने के कारण उन्हें आयुर्वेद का प्रथम उद्गाता कहा गया है। ऐसा कहा जाता है कि ब्रह्मा ने आयुर्वेद का ज्ञान प्रजापति दक्ष को दिया प्रजापति दक्ष ने अश्विनौ को दिया अश्विनौ ने इंद्र को दिया और इंद्र ने महर्षि चरक, सुश्रुत और वाग्भट को दिया। चरक संहिता के प्रति संस्कर्ता चरक है। चरक नाम बहुत प्राचीन है। कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा का नाम चरक है, इस शाखा के पढ़ने वाले शतपथ आदि में चरक कहे जाते है, ललित विस्तार में नित्य भ्रमणशील रहकर तपस्वीवृत्ति से जीवन यापन कर शिष्यों को ज्ञान देने वाले संन्यासियों को चरक कहा जाता था।

"अन्यतीर्थक श्रमण ब्राह्मण चरक पारिवाजकोनाम्।" (प्रथम अध्याय)

वाराहमिहिर के वृहत् जातक में सन्यासी के अर्थ में चरक शब्द आया है। उस काल में चक्र धारण करने वाले तथा योगाभ्यासी साधुओं को चरक कहा जाता था। **"चरकश्चक्रधरः।"**

चरक का समय–त्रिपिक के चीनी अनुवाद में कनिष्क सम्राट कनिष्क का काल ईसा की पहली शताब्दी। इस कनिष्क की विद्वत् सभा में अश्वघोष कवि थे। अश्वघोष की रचना में चरक संहिता की छाया दिखायी देती है। इससे ऐसा अनुमान किया जाता है कि सम्भवतः इसी काल में अग्निवेश संहिता का प्रतिसंस्कार किया गया होगा।

चरक का समय ईसा की प्रथम शताब्दी के पूर्व का अथवा ईसा की प्रथम शताब्दी का माना का जाता है। चरक संहिता में गर्भ निर्माण के सम्बन्ध में धन्वन्तरि मत का उल्लेख किया गया है। (च. संहिता शरीर, 6)

गर्भाधान संस्कार :–

गर्भाधान का अर्थ हैं शिशु का माता के गर्भ में बीज रूप से प्रतिष्ठित होना गर्भाधन है। संस्कार का साधारण अर्थ है किसी वस्तु को ऐसा रूप देना, जिसके द्वारा वह अधिक उपयोगी बन जाये। संस्कृति की दृष्टि से मानव के संस्कार अभिव्यक्ति की परिधि सीमित है। वैसे तो सभी एक अच्छी व संस्कारी विद्वान संतान की आशा करते है परन्तु चरक जी ने यह स्पष्ट किया है कि इसके लिए माँ का खानपान आचार–विचार और आसपास का वातावरण बहुत प्रभावित करता है। इसलिए कहा भी गया है : ''जैसा अन्न वैसा मन।''

गर्भोपपत्तौ तु मनः स्त्रिया यं जन्तुं व्रजेत्तत्सदृशं प्रसूते।।

(श. अतुल्यगोत्रीय शारिराध्याय 2–25)

प्रश्न :– सन्तान के सदृश होने में क्या कारण है?

उत्तर :– गर्भ की उत्पत्ति के समय स्त्री का मन जिस किसी प्राणी की ओर आकृष्ट होता है, उसी प्राणी के सदृश सन्तान को स्त्री उत्पन्न करती हैं।

गर्भस्य चत्वारि चतुर्विधानि भूतानि मातापितृसंभवानि।
आहारजान्यात्मकृतानि चैव सर्वस्य सर्वाणि भवन्ति देहे।। 2.26
तेषां विशेषाद्बलवन्ति यानि भवन्ति मातापितृकर्मजानि।
तानि व्यवस्येत् सदृशत्वहेतुं सत्त्वं यथानूकमपिव्यवस्येत्।। 2.27

माता–पिता के सदृश होने का द्वितीय कारण सभी गर्भों के शरीर की उत्पत्ति में सभी मातृज, पितृज, आहारज और आत्मकृत कर्म ये चार और चार महाभूत (वायु, अग्नि, जल और पृथिवी) कारण है। इन कारणों में जिस माता–पिता और कर्मज कारण की जब विशेष रूप से प्रधानता होती है, तब उस प्रधान रूप महाभूत के सदृश और मन में भी जिस सत्व, रज और तम गुण की प्रधानता होती है उसी के समान सन्तानें उत्पन्न होती हैं।

"कन्यां सुतं वा सहितौ पृथग्वा सुतौ सुते वा तनयान् बहून वा।
कस्मात् प्रसूते सुचिरेण गर्भमेकोऽभिवृद्धिं च यमेऽभ्युपैति।।" (श. 2.11.)

प्र. 1. स्त्री किस कारण से कन्या को उत्पन्न करती है।
प्र. 2. पुत्र कैसे उत्पन्न करती है?
प्र. 3. पुत्र व पुत्री साथ ही कैसे उत्पन्न करती है?
प्र. 4. दो पुत्रों को जोड़े के रूप में कैसे उत्पन्न करती है?
प्र. 5. दो पुत्रियों को जोड़े के रूप में कैसे उत्पन्न करती है?
प्र. 6. बहुत सन्तान को एक ही काल में कैसे उत्पन्न करती है?
प्र. 7. गर्भ को बहुत देर से क्यों प्रसव करती है?
प्र. 8. जोड़े सन्तान में एक की अधिक वृद्धि होती है, एक की कम वृद्धि होती है, ऐसा क्यों होता है?

चरक संहिता में यह स्पष्ट किया गया था कि आर्तव के अधिक होने के कारण कन्या तथा शुक्र के अधिक होने से पुत्र उत्पन्न होता है। जब शुक्र–आर्तव मिलित बीज भाग को वायु समान भाग में बाँटती है तो जिस भाग से शुक्र की अधिकता तो पुत्र और जिस भाग में आर्तव की अधिकता तो कन्या इस प्रकार पुत्र–पुत्री उत्पन्न होते है। जब बीज– भाग को शुक्र की अधिकता वाली वायु दो भाग करती है तो दो पुत्र और जब आर्तव की अधिकता वाली वायु दो भाग करती है तो दो कन्याएँ उत्पन्न होती है। गर्भाशय में गये हुए शुक्र–आर्तव को गर्भाशय में ही अत्यन्त बढ़ी हुई वायु जितना अधिक विभाग करती है उतनी ही सन्तानें होती हैं। यह बात पूर्वजन्म के कर्म के, अनुसार होती है इसमें स्त्री का कोई भी वश नहीं होता है।

हमारी भारतीय संस्कृति में गर्भाधान के समय तीन संस्कारों के विषय में बताया गया है। जो गर्भ की रक्षा

व स्वास्थ्य से सम्बन्धित है।

1. पुंसवन 2. सीमन्तोन्नयन 3. जातकर्म

पुंसवन संस्कार :–

माता–पिता के द्वारा उच्च विचारों की मानसिक प्रतिष्ठा, महान और तेजस्वी–पुत्र पाने की कामना से यह संस्कार गर्भ धारण के तीसरे माह किया जाता है। तीसरे महीने के पश्चात शिशु का मस्तिष्क विकसित होने लगता है और इस संस्कार के द्वारा गर्भस्थ शिशु के संस्कारों की नींव रखी जाती है। ऐसा माना जाता है कि गर्भस्थ शिशु गर्भ में ही सीखना शुरू कर देता है इसके उदाहरण है अभिमन्यु, अष्टावक्र इत्यादि।

सीमन्तोन्नयन संस्कार :–

यह संस्कार गर्भधारण के चौथे, छठे या आठवें मास में किया जाता है। इस समय गर्भ में पल रहा बच्चा सीखने लगता है। उसमें अच्छे गुण स्वभाव और कर्मका ज्ञान भी आए। इसलिए मां अच्छे आचार–विचार, व्यवहार और रहन–सहन करती है। स्त्री का मन प्रसन्न रहें इसलिए यह संस्कार किया जाता है।

जातकर्म संस्कार :–

नवजात शिशु के नालच्छेदन से पूर्व इस संस्कार को करने का विधान है। सृष्टि के प्रत्यक्ष संपर्क में आने पर नवजात शिशु को मेधा, बल एवं दीर्घायु के लिए स्वर्ण खंड से मधु एवं घृत वैदिक मंत्रों के उच्चारण के साथ चटाया जाता है। इसके बाद माता संतान को स्तनपान कराती है। तो इस प्रकार से पता चलता है कि गर्भस्थ शिशु को एक अच्छा व्यक्तित्व बनाने की शुरुआत उसके मां के गर्भ में आने से ही शुरू हो जाती है जिसको समाज में संस्कारों का नाम दिया गया है।

सन्दर्भ :–

1. आयुर्वेद का इतिहास – डॉ. कन्हैयालाल तिवारी।
2. चरक संहिता– चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
3. भारत की संस्कृति–साधना – रामजी उपाध्याय।
4. वैदिक वाङ्मय में विज्ञान – डॉ. रामेश्वर दयाल गुप्त।
5. इन्टरनेट– e–source।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 105-108

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संस्कृत में निहित नैतिक मूल्य

हितेश कुमार

शोधार्थी, हिंदी, एफ. एस. यूनिवर्सिटी, शिकोहाबाद।

नैतिक मूल्य दो शब्दों के योग बना है – नैतिक और मूल्य ये दोनों ही शब्द संस्कृत भाषा के शब्द हैं। 'नैतिक' शब्द 'नीति' से बना है। 'नीति' शब्द, प्रापणार्थक णीच्' धातु में क्तिन्प्रत्यय जोड़ने से बनता है।' हिन्दी शब्दकोश में 'नीति' शब्द के विभिन्न अर्थ दिए गए हैं जैसे :–

ले जाना या चलने की क्रिया, भाव या ढंग, व्यवहार की रीति, आचार पद्धति, व्यवहार की वह रीति जिससे अपना कल्याण हो और समाज की भी कोई बाधा या हानि नहीं हो।

लोक व्यवहार के लिए उचित ठहराया गया आचार– व्यवहार, सदाचार, आदि।

राजा और प्रजा को रक्षा के लिए निर्धारित व्यवस्था राजविद्या अदि का ज्ञान होना

राज्य की रक्षा के लिए काम में लाई जाने वाली युक्ति ही नीति है।

किसी कार्य को सिद्ध करने के लिए चली जाने वाली चाल उपाय, या युक्ति ही नीति है।

रैशडल के अनुसार – नीतिशास्त्र शुभ तथा अशुभ का वह सिद्धान्त है जिसका लक्ष्य मानवमात्र का कल्याण है।[3] इसी श्रृंखला में 'मूर' भी आचार–विचार को शुभ का विज्ञान मानते हैं।[4]

मूल्यों के बिना यह जीवन व्यर्थ है, मूल्यों के साथ ही जीवन अर्थपूर्ण है। जो मनुष्य मूल्यों को महत्व देता है, वह समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान भी रखता है। अतः इस संसार जिस वस्तु का महत्व होता है उसे मूल्य/मूल्यवान कहा जाता है।

साधारणतः हम कह सकते हैं कि ऐसे मूल्य जो हमारा मार्गदर्शन करते हैं कि हमें कैसे व्यवहार करना चाहिए वे नैतिक मूल्य कहलाते है। सच्चाई, ईमानदारी, प्रेम, दयालुता, मैत्री आदि को ही नैतिक मूल्य कहा गया है।

प्राचीन भारत में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा पाई जाती है, जिसका अभिप्राय है कि पूरी धरती ही एक परिवार है और यहां सभी को एक दूसरे के साथ परस्पर प्रेमपूर्वक रहना चाहिए। भारतीय संस्कृति की यह अवधारणा उसके सारतत्व सह–अस्तित्व पर ही आधारित है। हम कह सकते है कि संस्कृत भाषा नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण भाषा है। संस्कृत की सूक्तियाँ, नीति वचन, सुभाषित श्लोक, गद्य साहित्य, पद्यसाहित्य, चम्पूकाव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य कोई भी विधा को पढ़िए आपको सर्वत्र, मानवीय मूल्यों, नैतिक मूल्यों देश प्रेम, अच्छे, राजनेता, अच्छे विद्यार्थी, के लक्षणों से कदम–कदम पर परिचित करा जाएगा।

सभ्य नागरिक को कौन–कौन से कार्य करने चाहिए। अर्थात् करणीय एवं अकरणीय कार्यों से पग–पग

पर चेताया जाएगा। ईशोपनिषद में कहा गया है –

'ईशावास्यामिदं सर्व यत्किञ्चगत्यां जगत्'[5] अर्थात् इस जगत् में जो कुछ स्थावर–जंगम है वह सब ईश्वर के द्वारा आच्छादित है। इसी प्रकार छांदोग्य उपनिषद् का महा वाक्य है – 'सर्वंखल्विदंब्रह्मतज्जलानिति'[6] यह सब निश्चित ही ब्रह्म है क्योंकि यह जगत् ब्रह्म से ही उत्पन्न, उसी में लय होने वाला उसी में स्थित है। 'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना'[7] अर्थात् इस संसार को मैंने अपने अव्यक्त रूप द्वारा व्याप्त किया हुआ है। और भूतभृन्नचभूतस्योममात्माभूत भावनः[8] यह मेरी आत्मा सब प्राणियों को उत्पन्न करने वाली है। मैं ही सब प्राणियों का पोषण करने वाला हूँ। इस प्रकार सृष्टि की यह आन्तरिक एकता ही जीवन को सम्बन्धों से बांधती है।

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानं तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।[9]

अर्थात् यह मेरा अपना है और यह पराया है। इस तरह की गणना छोटे चित वाले लोग करते हैं। उदार ह्रदय वाले लोगों के लिए तो सारी भूमि/धरती ही परिवार है। नीति शतक में स्वयं भर्तृहरि जी ने कहा है कि–

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।[10]

अर्थात् नीति विपुण व्यक्ति निन्दा या स्तुति, लाभ या हानि की चिन्ता किए बिना प्रत्येक अवस्था में नीति के मार्ग (न्यायोचिंत मार्ग) का अनुसरण करते हैं। राजाओं के लिए नीति मार्ग बताया गया है :–

दानं भोगो नाशस्तिस्त्रों गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्घ्कते तस्य तृतीया गतिभवति।।[11]

इस प्रकार नीतिशतक, पञ्चशतक, षट्शती, इत्यादि के माध्यम से राजाओं या राजनेताओं प्रजा के हितों को ध्यान में रखकर निर्णय लेने, उनसे कर वसूलने एवं नए नीति नियमों को लागू करने तथा धन को खर्च करने की विधियां एवं उपयोग भी बताए हैं।

नैतिक मूल्यों का निर्वाहन यदि मनुष्य और मनुष्य के बीच हुआ तो सृष्टि–जीवन अपनी पूर्णता में स्वस्थ एवं समरस नहीं हो पाएगा। इसके लिए आवश्यक है कि नैतिक मूल्यों के आचरण का विस्तार प्रकृति तक हो क्योंकि बाहर जो सूर्य का प्रकाश है, वही भीतर बुद्धि का प्रकाश है, बाहर जो अँधकार है वही भीतर भय है। भौतिकतावादि मे युग आज मनुष्य बहुत आगे बढ़ गया है परन्तु नैतिक दृष्टि से उसके आचरण के चरण दिन प्रतिदिन बौने होते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप परिवार, समाज, विश्रृंखलित होते जा रहे हैं। नारी–उत्पीडन, बाल शोषण भ्रष्टाचार, लूटपाट, हिंसा, गुरु–शिष्य सम्बन्ध, आए दिन हमारे सामने प्रश्न चिह्न के रूप में खड़े है। ऐसी स्थिति में मानवीय नैतिक मूल्यों से युक्त संस्कृत वाड्मय एकमात्र विकल्प है। जिसमे काव्यात्मक, व्यवहारिक और मूर्तिमान रूप में नैतिक मूल्यों का स्वरूप दिखाई देता है। और जो भ्रमित समाज को सही दिशा प्रदान कर सकता है।

नीतिशतक में भर्तृहरि जी ने कहा है :–

येषां नविद्या न तपो न दानं,

ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।।
ते मृत्यलोके भुवि भारभूता,
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।।

अर्थात् जिन पुरुषों में न दान देने की प्रवृत्ति है, न विद्या है, न तप है, न शीलता है और न कोई अन्य गुण है वे मनुष्य पृथ्वी पर भार स्वरूप है और मृग रूपी पशु की भांति इस पृथ्वी पर विचरण करते हैं। मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ, और मनुष्य का विश्व के साथ आचारण एक ही व्यवहार के दो सोपान हैं। मनुष्य परिवार से आरम्भ होता हुआ समाज से जुड़ता है और फिर इसी तरह सम्बन्धों के क्रमिक एवं उत्तरोत्तर विकास प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान करते हुए निर्वहन करता है।

नैतिक मूल्य अन्य सभी मूल्यों का आधार स्तम्भ माने जाते हैं। इन मूल्यों का पालन ही व्यक्ति और समाज दोनो को नैतिक बनाता है। मनुष्य में विद्यमान दयालुता का भाव उसे अन्य मनुष्यों को कठिनाई में देखने पर उसे उनकी सहायता करने के लिए प्रेरित करता। आज आवश्यकता है कि हम अपनी आने वाली पीढ़ी में इन मानवीय मूल्यों की उत्पत्ति कैसे करें, उन्हें अपनी सभ्यता एवं संस्कृति से रूबरू कराने का समय आ गया है, इसके लिए सबसे पहले इन नैतिक मूल्यों को जानना, उनका अनुकरण करना, उन्हें व्यवहार में लाना सबसे ज्यादा जरूरी है और उससे भी ज्यादा जरूरी है संस्कृत का अध्ययन क्योंकि संस्कृत ज्ञान–विज्ञान के भण्डार के साथ–साथ शिष्टाचार से भी परिपूर्ण है। नैतिक मूल्यों की हम अपनी बुद्धि के अनुसार जितना आसानी से समझ जाये इसके लिए वर्गीकरण भी कर सकते हैं।

1. **आध्यात्मिक मूल्य** :– इन मूल्यों में आस्तिकता, श्रद्धा, सहृदयता, विनम्रता, शांति, दया आदि आते हैं।
2. **सामाजिक मूल्य** :– सामाजिक मूल्यों में साहस, वीरता, आनन्द, शांति, सेवा, सत्य, के प्रति सम्मान, श्रम की प्रतिष्ठा, पवित्रता, विनम्रता, सहयोग की भावना आदि आते हैं।
3. **सांस्कृतिक मूल्य** :– सांस्कृतिक मूल्यों में विश्वास, कला, ज्ञान, नीति, न्याय, रीति रिवाज आदतें इत्यादि सांस्कृतिक मूल्य है।
4. **नैतिक मूल्य** :– कर्तव्य परायणता, सत्यभाषी, बड़ो का सम्मान, शुचिता, शील का पालन, पवित्र स्थलों द्वारा धन के अर्जन।
5. **राजनीतिक मूल्य** :– दलगत राजनीति से ऊपर उठकर देश के हितार्थ कार्य करना राजनीतिक मूल्य कहलाता हैं।
6. **अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य** :– आधुनिक युग की भगदड़ को देखते हुए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत हम अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना, शांति, भाईचारा आदि की रख सकते हैं।

विश्व शान्ति के लिए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना की महती आवश्यकता है। हमारी भारतीय सभ्यता और संस्कृति मानव को पशुत्व से पृथक करके सच्चे अर्थों में मानव बनाती है उससे चरित्र, सत्कार, धर्म, नीति रीति युक्त मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है। संस्कृत भाषा में शिष्टाचार की महता जीवन का सर्वाधिक आहार्य तत्व माना गया है।

मातृ देवो भवः पितृ देवो भवः आचार्य देवोभवः अतिथि देवो भवः का महावाक्य अपने आप में माता–पिता–गुरु और अतिथि के साथ देवतुल्य व्यवहार को प्रकट करता है।

जब सम्पूर्ण संसार में संस्कृति के अंकुर फूटने वाले थे, तब भारत भूमि में एक विकसित नैतिक संस्कृति ने सम्पूर्ण विश्व की संस्कृतियों को प्रभावित किया। यथार्थ लक्ष्य की पूर्ति में नैतिक जीवन मूल्यों के योगदान का सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति ही संतुलित जीवन की मुख्य धुरी हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. रामकथा में नैतिक मूल्य डॉ. विनोद बाला अरुण, प्रभात प्रकाशन दिल्ली – पेज नं. 22
2. वहीं, पेज नं. 22
3. डॉ. दिवाकर पाठक, भारतीय नीतिशास्त्र, पृ० 2
4. डॉ. दिवाकर पाठक, भारतीय नीतिशाला, पृ० 2
5. ईशोपनिषद् – 1
6. छान्दोग्य उपनिषद – 3.14.1
7. श्रीमद् भगवद्गीता – 9.3.
8. श्रीमद् भगवद्गीता – 9.4
9. महोपनिषद्, अध्याय–6 मन्त्र. 71
10. नीतिशतकम् – डॉ. रूपनामण त्रिपाठी, आदर्श प्रकाशन जयपुर।
11. Reviews of Literature Volume-3 Issue-6-2016
12. नीतिशतकम् – श्लोक – 12

Email- 1990hiteshkumar@gmail.com

Mob. 9813583376

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 109-112

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कथावस्तु के आधार पर राग दरबारी का मूल्यांकन

डॉ. सुमन शुक्ला
प्रवक्ता, चुटकी भंडार गर्ल्स इंटर कॉलेज, हुसैनगंज, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

लखनऊ जिले के अतरौली नामक गांव के एक साधारण किसान परिवार में 31 दिसंबर सन् 1925 को श्रीलाल शुक्ल जी का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम पंडित ब्रज किशोर शुक्ल था। जिस गांव में बालक श्रीलाल का जन्म हुआ था, वह जमीदारी वाले दिनों की व्यवस्था में जकड़ा हुआ गांव था। जिसमें अलग–अलग जातियों की अपनी–अपनी परंपराएं और अपने तौर–तरीके थे। किसी भी तरह की वर्ग चेतना नहीं थी, हर आदमी की अपनी हैसियत मुकर्रर थी। गंदी गलियां, रास्ते और बच्चे आदि थे, पर एक भी पक्का मकान नहीं था। गांव के तीन ओर खेत थे, और विस्तीर्ण जंगल, शेष एक ओर लखनऊ जाने वाली सड़क, और घनी अमराइयों का सिलसिला था। गरीबी, विपन्नता और प्राकृतिक संपदा से भरपूर वह गांव था, जहां बालक श्रीलाल का बचपन बीता। प्रारंभिक शिक्षा गांव से पूर्ण होने के बाद श्रीलाल शुक्ल जी लखनऊ, कानपुर और इलाहाबाद में भी शिक्षा ग्रहण किए। शिक्षा के साथ–साथ उनका लेखन कार्य भी चलता रहा, परंतु स्नातक पास करते–करते किशोर श्रीलाल शुक्ल जी का रचनात्मक उफान शांत हो गया और उनका युवा मन अपनी अग्रिम उच्च शिक्षा और जीवन यापन की समस्याओं में उलझने लगा। उत्तर प्रदेश की प्रशासनिक सेवा में आ जाने के बाद सन् 1953–54 में हमीरपुर जिले के दूरस्थ क्षेत्रों में रहते हुए वहां के अपेक्षाकृत शांत जीवन में उन्हें पुनः लिखने की प्रेरणा मिली और उन्होंने अपना लेखन कार्य पुनः प्रारंभ किया। उनकी दृष्टि सत तत्वान्वेषी और उनके मानवीय संवेदना का फलक अत्यंत व्यापक था। व्यक्ति और समाज की विद्रूपताओं एवं विसंगतियों से वह समय–समय पर विचलित हो उठते थे, मनुष्य के भीतर से जिस मानवीयता अर्थात मनुष्यता का निरंतर क्षरण हो रहा था, इससे वे अत्यंत व्यथित होते थे, समाज की मुल्य हीनता से व्यथित होकर, श्रीलाल शुक्ल जी ने अपनी यथार्थ, सहज और संवेदी पड़ताल के द्वारा गांव की कथा के माध्यम से जिस आधुनिक भारतीय जीवन की मूल्यहीनता को सहजता और निर्ममता से अनावृत करते हुए अपनी लेखनी चलाई थी, वही कथा कालजई रचना 'राग दरबारी' के रूप में 1968 में प्रकाशित हुई थी। 'राग दरबारी' का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण साहित्यिक घटना थी। सन् 1970 में इसे साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया और 1986 में एक दूरदर्शन धारावाहिक के रूप में इसे लाखों दर्शकों की सराहना प्राप्त हुई। 'राग दरबारी' की कथा एक बड़े नगर से कुछ दूर बसे हुए गांव की जिंदगी से है, जो इतने वर्षों की प्रगति और विकास के नारों के बावजूद निहित स्वार्थों और अनेक अवांछनीय तत्वों के सामने घिसट रही है। 'राग दरबारी' उसी जिंदगी का दस्तावेज है।

किसी विषय पर कथाकार की अंतर्दृष्टि तथा उसकी संचेतना, विषय के प्रति सामाजिक, राजनैतिक

सरोकार आदि से संचालित होकर एक फलक तैयार करती है, और उस फलक को रोचक, वास्तविक, प्रवाह गम्य तथा प्रभावशाली रूप प्रदान करने का कार्य करती है –'कथा वस्तु'। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कथा वस्तु ही वह भित्ति है जिसके सहारे किसी रचना का भवन खड़ा होता है। इसी प्रसंग में हम कथा वस्तु के आधार पर श्रीलाल शुक्ल द्वारा रचित 'राग दरबारी' का मूल्यांकन करके देखेंगे कि कथा वस्तु रूपी भित्ति के द्वारा 'राग दरबारी' रूपी भवन को रचने में श्री लाल शुक्ल जी कितने सफल हुए हैं। उपन्यास का कथा वस्तु घटनाओं का संकलन मात्र ही नहीं होता, अपितु उसमें उपन्यासकार की यह कला भी समाहित होती है कि वह घटनाओं को कार्य कारण की श्रृंखला में बांधकर सुसंबद्ध रूप में प्रस्तुत करे।

उपन्यास की कथावस्तु में कथानक का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है, कथानक के द्वारा ही कथावस्तु प्रभावशाली बनती है। ई.एम. फोर्स्टर ने अपनी 'आस्पेक्ट्स ऑफ द नावेल' नामक प्रसिद्ध पुस्तक में कथानक का विस्तृत विवेचन किया है, ई. एम. फॉर्स्टर के अनुसार–'कथानक भी कहानी के समान समयानुक्रम में नियोजित घटनाओं का वर्णन ही है, पर उसमें बल, कारणत्व या कार्य– कारण–संबंध पर होता है।' (पृ.स.–15, 'उपन्यास का शिल्प' गोपाल राय) घटनाएं उपन्यास की शिराएं हैं, जिस प्रकार स्नायु मंडल के बिना हम शरीर मंडल की रचना की कल्पना नहीं कर सकते उसी प्रकार घटनाओं के जाल के बिना उपन्यास के ताने–बाने की रचना नहीं हो सकती। घटनाएं जीवन के स्रोत के साथ उपन्यास का संबंध स्थापित कराती हैं। सामाजिक गतिविधियों, वैयक्तिक अभिरुचियों तथा घटनात्मक प्रतिक्रियाओं की उपन्यासकार में जितनी प्रतिभा या क्षमता होगी, कथा वस्तु को वह उसी रूप में ग्रहण करेगा तथा उसके स्वरूप निर्माण में प्रवृत्त होगा। जीवन की गतिशीलता को जो रचनाकार जितने सहज और सशक्त ढंग से अभिव्यक्त कर ले जाता है, उसकी रचना उतनी ही प्राणवान, गतिशील और युग संचारिणी होती है। इसके लिए उपन्यासकार को अपने उपन्यास की कथा वस्तु के नियोजन में ही तद्गत आयाम की आधार भूमि तैयार करनी पड़ती है, तथा बलवती कल्पना का भी सहयोग लेना पड़ता है, तभी वह प्रभावशाली कथा वस्तु के द्वारा अपने उपन्यास को रोचक और प्रवाह गम्य रूप दे पाता है।

'राग दरबारी' कथा वस्तु के आधार पर हमारे सामने एक सम्यक तस्वीर उपस्थित करता है। उपन्यास का प्रारंभ ही श्री शुक्ल जी के व्यंग्यात्मक प्रहार से होता है। जिसका उदाहरण दृष्टव्य है–'शहर का किनारा। उसे छोड़ते ही भारतीय देहात का महासागर शुरू हो जाता था। वहीं एक ट्रक खड़ा था। उसे देखते ही यकीन हो जाता था, इसका जन्म केवल सड़कों के साथ बलात्कार करने के लिए हुआ है। जैसे कि सत्य के होते हैं', (पृ.सं–5/राग दरबारी) यह उपन्यास आजादी के बाद देश के विकास के परिप्रेक्ष्य में गांव और वहां के समाज की दुर्गति का यथार्थ चित्र उभारकर हमारे सामने लाता है। विकास की थोथी स्वप्नदर्शी कल्पना इसमें आए प्रमुख पात्रों जैसे शक्ति सामंतों के हाथों किस प्रकार मच्छरों की भांति मसल दी जाती है, इसका बड़ा ही नग्न चित्र राग दरबारी में देखने को मिलता है। इसे गांव पर आधारित उपन्यास कहा गया है। 'शिवपाल गंज' को भारत के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'राग दरबारी' का गांव स्वतंत्र भारत की मानसिकता की भूमि पर विकसित गांव है। जहां माननीय वृत्तियों का व्यापक प्रसार नाना दुर्गुणों का आधुनिक परिदृश्य, मिथ्या अवधारणाओं पर आधारित (झूठे) प्रजातंत्र की देह से लिपटा दम तोड़ता परंपरागत जन विश्वास का दयनीय रूप और इसी तरह का ना जाने क्या–क्या मूर्त होता दिखाई देता है। 'राग दरबारी' का 'शिवपाल गंज' वह गांव है। जो स्वातंत्र्योत्तर विकासोन्मुख भारत का प्रतिनिधित्व करता है। रंगनाथ इसी 'शिवपाल गंज– में स्वास्थ्य ठीक करने

के बहाने नए स्वप्न संजोने पहुंचता है। जिसकी परिणति यथार्थ की भूमि पर उनके खंड–खंड बिखरने में दिखाई देती है।

हमारे आजाद देश के युवक के सपने का, गांव की धरती पर जो दृश्य श्री शुक्ल जी ने दिखाया है, वह रचनात्मक भूमि पर कितना संदेशवाही है, यह सहज ही दृष्टिगोचर होता है। श्री शुक्ल जी 'राग दरबारी' के कथा वस्तु में शिक्षा व्यवस्था को केंद्र में रखकर शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त विसंगतियों तथा उसके बीमा–स्वरूप पर करारा व्यंग्य किया है। ट्रक ड्राईवर रंगनाथ की तालीम पर व्यंग्य करते हुए कहता है 'वर्तमान शिक्षा पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है, जिसे कोई भी लात मार सकता है। '(पृ.स.–10/राग दरबारी) श्री लाल शुक्ल 'राग दरबारी' में एक ऐसे खलु समाज की रचना करते हैं, जहां स्वतंत्रता, जनतंत्र, न्यायपालिका, पंचायत राज, सहकारिता तथा अन्य जनतांत्रिक संस्थाएं एवं विकास की योजनाएं निहित स्वार्थों एवं अवांछनीय तत्वों के हाथ की कठपुतली भर बनकर रह जाती है। भारत जैसे अर्ध सामंती और विकासशील देश में जन तंत्र को कैसे निहित स्वार्थों के लूट तंत्र में बदला जा सकता है, 'शिवपाल गंज 'इसकी छोटी–मोटी प्रयोगशाला है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में वैद्य जी सरीखे परजीवी वर्ग द्वारा जनतांत्रिक संस्थाएं एवं विकास योजनाएं किस प्रकार व्यक्तिगत हित साधन हेतु अपहृत कर ली गईं, 'राग दरबारी' इसकी मनोरंजक औपन्यासिक पैरोडी है। शिवपाल गंज एक ऐसा प्रिज्म है, जहां से आधुनिक जनतंत्र का विकृत यथार्थ सैकड़ों किरणों के माध्यम से अपने विरुपित व कुरूपित रूप में कभी दिखता है, तो कभी विलुप्त हो जाता है।

'राग दरबारी' के केंद्र में वैद्य जी की बैठक, छंगामल कॉलेज, को ऑपरेटिव सोसाइटी एवं ग्राम पंचायत सरीखी संस्थाएं हैं। जिन पर स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज के विकास की अवधारणाएं टिकी हैं। इन संस्थाओं की विकृतियों को चिन्हित करते हुए, श्री शुक्ल जी विलायती तालीम पाए हुए जनतंत्र को कटघरे में खड़ा करते हैं– 'हमने विलायती तालीम तक देसी परंपरा में पाई है और इसीलिए हमें देखो, हम आज भी उतने ही प्राकृत हैं! हमारे इतना पढ़ लेने पर भी हमारा पेशाब पेड़ के तने पर ही उतरता है, बंद कमरे में ऊपर चढ़ जाता है। '(पृ. सं–16/राग दरबारी) 'राग दरबारी' के कथा वस्तु में शिवपाल गंज के खलु समाज का नायकत्व वैद्य जी उनके कुनबे और उनके संगी साथियों का है। जो परजीवी बिचौलिया संस्कृति के प्रतिनिधि हैं। जो हर युग में रहे हैं। श्री शुक्ल जी के ही शब्दों में 'वैद्य जी थे, हैं और रहेंगे।'

वंशवाद, कुनबा परस्ती, जाति प्रेम, राजनीति का अपराधीकरण और अपराध का राजनीतिकरण आदि यह सभी विकृतियां जो आज भारतीय जनतंत्र के लिए एक बड़ी चुनौती बन गई हैं, 'राग दरबारी' में उसकी पहचान की गई है। वर्तमान राजनीतिक माफिया जिस उर्वर भूमि की उपज हैं, 'शिवपाल गंज' उसका एक लघु प्रति रूप है। उपन्यास के रुपन के अनुसार– 'सारे मुल्क में यह शिवपाल गंज ही फैला हुआ है' (पृ.सं–313/राग दरबारी) 'ठेठ शिवपाल गंज दूसरी ओर सड़क छोड़कर था। असली शिवपाल गंज वैद्य जी की बैठक में था।' (पृ. सं–26/राग दरबारी) आगे श्री शुक्ल जी ने अपने कथावस्तु में वैद्य जी के बैठक का (जो राजनीतिक षड्यंत्रों का प्रस्थान बिंदु था) बड़ा ही सुंदर और अलंकृत चित्र खींचा है– 'बैठक का मतलब ईंट और गारे की बनी हुई इमारत–भर नहीं है। नं. 10 डाउनिंग स्ट्रीट, व्हाइट हाउस, क्रेमलिन आदि मकानों के नहीं ताकतों के नाम है।'(पृ. सं 27/राग दरबारी) 'राग दरबारी' इस ताकत का विमर्श है, जो चोरी, लूट, डकैती, भ्रष्टाचार, न्यायपालिका और कार्यपालिका के मनमाने दुरुपयोग पर टिकी है। 'राग दरबारी' के वैद्य जी, उनका कुनबा और उनके सभी साथी

लूट तंत्र की इस ताकत के प्रतिनिधि हैं। राजनीति की नकेल आज जिस अर्धशिक्षित, अराजक, स्वार्थी तत्वों के हाथों में है, रुपन बाबू सरीखे एंग्री युवक उसकी शैशवावस्था के प्रतिनिधि हैं। कथा वस्तु के आधार पर 'राग दरबारी' का मूल्यांकन करने पर यह तथ्य प्रकट होता है कि 'राग दरबारी' में चयनित कथावस्तु निश्चय ही मौलिक है।

ऐसे कथावस्तु की उपस्थिति एक औपन्यासिक परिवेश में श्री शुक्ल जी ने पहली बार दर्ज की है। जो परिस्थितियां घुन की तरह आज हमारे प्रजा तंत्र और सामाजिक एवं न्यायिक व्यवस्था को चाट रही हैं, उनका बड़ा ही जीवंत अंतर्भेदी, व्यंग्यपूर्ण और प्रभावशाली वर्णन भी श्री शुक्ल जी ने किया है। निश्चय ही साहित्य के पटल पर इतने सुनियोजित ढंग से इनके प्रस्तुतीकरण की आवश्यकता थी, और उस आवश्यकता की पूर्ति श्री शुक्ल जी ने बड़े ही सफलता पूर्वक किया है। इस दृष्टि से वे एक मौलिक रचनाकार कहे जाएंगे एवं उनका कथावस्तु अपनी सीमा में पूर्णतः सफल माना जाएगा। डॉ. गोपालराय के अनुसार – 'उपन्यास में प्रस्तुत वस्तु को सत्य दिखना होता है; सरल कथन या वर्णन द्वारा उसे सत्य दिखाना पर्याप्त नहीं होता।' (पृ.सं–54/उपन्यास का शिल्प) इस संदर्भ में देखा जाए तो विश्वसनीय यथार्थता की दृष्टि से यह उपन्यास पूर्णतः सफल माना जाएगा, क्योंकि इसमें जिन–जिन घटनाओं का उल्लेख हुआ है, उसकी प्रत्याभूति भारत के प्रत्येक नागरिक को है। 'राग दरबारी' के सभी पात्र अपने जीवंत आचरण और स्वनिर्मित व्यक्तित्व के साथ समाज में सर्वत्र खड़े दिखाई देते हैं। तात्पर्य यह है कि 'राग दरबारी' का कथावस्तु यथार्थता की भूमि पर पूर्ण विश्वसनीय एवं सफल दिखाई देता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. उपन्यास का शिल्प–डॉ. गोपालराय (बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना)
2. हिंदी कहानियों के शिल्प विधि का विकास –डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल।
3. हिंदी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचंद्र शुक्ल।
4. 'राग दरबारी' –श्रीलाल शुक्ल।
5. हिंदी उपन्यासों में सामाजिक विघटन –डॉ. धर्मेंद्रनाथ श्रीवास्तव।
6. हिंदी उपन्यास– उद्‌भव और विकास– डॉ. ब्रजनारायण सिंह।
7. उपन्यास शिल्प और प्रवृतियां –डॉ. सुरेश सिंह।
8. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास –रामस्वरूप चतुर्वेदी।
9. प्रतिनिधि हिंदी उपन्यास –डॉ. चमनलाल।
10. अंगद का पांव– श्रीलाल शुक्ल।
11. यह घर मेरा नहीं –श्रीलाल शुक्ल।
12. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं– श्रीलाल शुक्ल।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 113-116

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारवि द्वारा वर्णित दुर्योधन की राजव्यवस्था

डॉ. दिलारा रिज़वी

असिस्टेंट प्रोफेसर (कांट्रेक्चुअल) संस्कृत विभाग, वूमेन्स कॉलेज अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी अलीगढ़।

संस्कृत–साहित्य में अश्वघोष और महाकवि कालिदास के पश्चात् भारवि को महाकाव्यकारों के मध्य सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। इनका समय छठीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना गया है। इन्होंने किरातार्जुनीयम् नामक एक ही ग्रन्थ लिखा जिसकी गणना संस्कृत–साहित्य की बृहत्त्रयी में की जाती है।[1] उसमें भी भारवि को प्रथम स्थान दिया गया है। अपनी एकमात्र कृति के आधार पर ही यश प्राप्त करना कठिन कार्य होता है परन्तु भारवि ने अपनी प्रतिभा से यह कर दिखाया। किरातार्जुनीयम् 18 सर्गों में निबद्ध है। इसका मूल कथानक महाभारत के वनपर्व तथा शिव पुराण की प्रसिद्ध घटना अर्जुन द्वारा पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति है।[2] इसमें महाकाव्य के समस्त गुण पाये जाते हैं।

भारवि ने अपनी प्रतिभा के द्वारा संक्षिप्त कथानक को चमत्कारिक रूप से विस्तृत कर दिया। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से इसमें महाकाव्य के समस्त लक्षणों का समावेश किया गया है। भारवि को संसार का उच्चकोटि का अनुभव था। किरातार्जुनीयम् उनके काव्य–कौशल का प्रमाण है। जीवन के सभी पक्षों के साथ उनका राजनीति सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान ग्रन्थ के आरम्भ में ही परिलक्षित हो जाता है। प्रस्तुत शोधपत्र में प्रथम सर्ग में वर्णित दुर्योधन का सुशासन ही उल्लेखनीय है।

भारवि की अनुभूति राजनीति के विषय में बहुत मार्मिक एवं तलस्पर्शिणी है। उन्होंने ग्रन्थ के आरम्भ में ही वनेचर द्वारा ज्ञात दुर्योधन की शासन–व्यवस्था का उल्लेख किया है। युधिष्ठिर द्वारा भेजे गये गुप्तचर द्वारा ज्ञात होता है कि द्यूत करके दुर्योधन ने राज्य जीत तो लिया है परन्तु वह पाण्डवों के शील एवं पराक्रम से भयभीत है। वनवास की अवधि पूर्ण होने के पश्चात् कहीं उसे राज्य वापिस न करना पड़ जाये। इसलिए नीति के द्वारा वह जीती गई पृथ्वी को वश में रखने का इच्छुक है। उसकी नीतियाँ प्रजा को सुख पहुँचाने वाली थीं। इसलिए उसको सुयोधन कहा गया है –

विशंकमानो भवतः पराभवं नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः।
दुरोदरच्छद्मजितां समीहते नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः।।[3]

सुशासन से तात्पर्य ऐसी शासन–व्यवस्था से है जिसमें राजा अपने धर्म का पालन करे परिणामस्वरूप राज्य एवं राजा समृद्ध बन सकें। राजा प्रजा का अनुरंजन करने वाला होना चाहिए। वह भूपाल अर्थात् पृथ्वी का पालक होता है। अतः वह ऐसा हो जो राजा की गतिविधियों पर नज़र रख सके एवं उन पर विचार कर सके। अतः उसको नैतिकता के साथ अहर्निश कार्य करना चाहिए।

शासन की सफलता इस बात पर निर्भर होती है कि राजकर्मचारी एवं प्रजा शासक से प्रसन्न हों। इसी कारण दुर्योधन नीति–मार्ग का अनुसरण कर रहा है जिससे उसका राज्य स्थिर एवं सुदृढ़ रह सके। दुर्योधन कुटिल स्वभाव का है। अपने दुष्ट सम्बन्धियों के साथ मिलकर पांडवों को जीतना चाहता है। इसलिए अपने गुणों को प्रकट कर रहा है। उसने मनु द्वारा बतायी गयी पद्धति को आत्मसात करके काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं ईर्ष्या नामक छः शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली थी। साथ ही प्रत्येक कार्य का समय भी निश्चित किया। धर्म, अर्थ, काम नामक पुरुषार्थ कल्याण करने वाले हैं। इसलिए उसने इनमें संतुलन स्थापित किया हुआ है–

कृतारिषड्वर्गजयेन मानवीयगम्यरूपां पदवीं प्रतिपत्सुना।
विभज्य नक्तं दिवमस्ततन्द्रिणा वितन्यते तेन नयेन पौरुषम।।[4]

इस प्रकार दुर्योधन ने एक कुशल शासक होने का परिचय देते हुए अपने राज्य को सुदृढ़ बनाया एवं पुरुषार्थ का पालन भी किया। भारवि ने दुर्योधन को अहंकार शून्य राजा के रूप में दर्शाया है। इसीलिए वह बन्धुओं और सेवकों के साथ प्रेम पूर्ण व्यवहार करता है जिससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह स्वयं उनका सेवक हो। यह उसकी कुशल नीति का परिचायक है –

सखीनिव प्रीतीयुजोनुजीविनः समानमानान् सुहृदश्च बन्धुभिः।
स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम्।।[5]

राज्य प्राप्त तो सरलता से हो जाता है परन्तु उसकी रक्षा करना कठिन होता है। इसलिए उसने नीति द्वारा राज्य का संचालन किया जिससे प्रजा उसमें अनुरक्त रहे और अवसर पड़ने पर प्राण त्यागने को भी उद्यत रहे। अर्थ और काम नामक पुरुषार्थ कल्याणकारक होते है। अतः दुर्योधन ने उनमें संतुलन स्थापित किया हुआ है –

असक्तमाराधयतो यथायथं विभज्य समपक्षपातया।
गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान् न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्।।[6]

साम, दान, दण्ड भेद नामक चारों उपायों का भी वह कुशलता से प्रयोग कर रहा है। निष्कपट रूप से वह उपहार के साथ मधुर वाणी में वार्तालाप भी करता है एवं सम्मान भी करता है। मनु, बृहस्पति, याज्ञवल्क्य द्वारा निर्दिष्ट दण्डनीति के प्रति भी दुर्योधन सचेत है। अपराधी कोई भी हो वह समान अपराध का समान दण्ड देता है। मित्र अथवा शत्रु में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करता। उसने स्वयं को अंहकार शून्य बना लिया था–

वसुनि वाञ्छन् न वशी न मन्युना स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः।
गुरुपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम्।।[7]

अपने राज्य की सुरक्षा के प्रति भी वह सतर्क था। अतः उसने अपने विश्वासी गुप्तचरों को नियुक्त किया हुआ है। वह स्वयं उनकी गतिविधियों को यथासमय देखता भी रहता है –

विधाय रक्षान्परितः परेतरान् अशंकिताकारमुपौति शंक्तिः।
क्रियाऽपवर्गेप्वनुजीविसात्कृताः कृतज्ञातामस्य वदन्ति सम्पदः।।[8]

कार्य पूर्ण हो जाने पर वह उनको पारितोषिक देकर कृतज्ञता भी प्रदर्शित करता है। इस प्रकार गुप्तचरों के द्वारा उसे शत्रुओं के षड्यन्त्रों की भी जानकारी उपलब्ध होती रहती थी। अपनी नीतियों द्वारा उसने अन्य

राजाओं को इतना प्रभावित किया हुआ था कि वे स्वयं ही अश्व, गज आदि उसको उपहार स्वरूप भेंट करते थे –

अनेकराजन्यरथा वसंकुलं तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम्।
नयत्युग्मच्छदगन्धिरार्द्रतां भृशं नृपोपायनदन्तिनां मदः।।[9]

राजा की समृद्धि प्रजा की समृद्धि पर निर्भर हुआ करती है। इसलिए कुशल राजा को अर्थ–व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना चाहिए। इस संदर्भ में भी दुर्योधन ने अर्थव्यवस्था के मुख्य आधार कृषि पर ध्यान दिया।

उसने सिंचाई के कृत्रिम साधनों जैसे नहर, कुँओं तालाबों आदि का प्रबन्ध किया जिससे किसानों को केवल वर्षा के जल पर ही निर्भर न रहना पड़े –

सुखने लभ्या दधतः कृषीवलैरकृष्टपच्या इव सस्यसम्पदः।
वितन्वति क्षममदेवमातृकाश्चिराय तस्मिन्कुरवश्चकासति।।[10]

परिणाम स्वरूप कुरु प्रदेश की अतिशय कृषि समृद्धि हो रही थी। चहुंमुखी उन्नति होने के कारण दुर्योधन कुबेर के समान सम्पत्ति शाली हो गया था। गुणवान् राजा अपने राष्ट्र एवं प्रजा की भली प्रकार रक्षा करता है जिससे उसके योद्धा अपने स्वामी के लिए प्राणों का बलिदान करने को भी तत्पर रहते हैं –

महौजसो मानधनाः धनार्चिताः धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्त्तयः।
न संहतास्तस्य न भिन्नवृत्तयः प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम्।।[11]

दुर्योधन भी अपने महा तेजस्वी, गर्वीले और युद्ध–विद्या में निपुण योद्धाओं का धनादि द्वारा सत्कार करता रहता था जिससे वे उसके प्रति अनुरक्त रहते थे। दुर्योधन ने स्वयं में इतने गुणों का समावेश कर लिया था कि भय से नहीं अपितु उसके गुणों से आकृष्ट होकर उसके सेवक एवं प्रजा एवं अधीनस्थ राजा उसकी आज्ञा पालन करते थे –

न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः कृतं न वा कोपविजिह्यमाननम्।
गुणानुरागेण शिरो भिरुह्यते नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम्।।[12]

वह प्रजा के प्रति अनुरागी था। अत्यधिक पराक्रमी एवं वीर योद्धाओं के साथ बुद्धिमान् सामन्त भी उसके पास थे। फिर भी वह शत्रु की सामर्थ्य से अनभिज्ञ नहीं था। पांण्डवों की शक्ति उसे ज्ञात थी। अतः कूटनीति का प्रयोग करके वह उन पर विजय प्राप्त करना चाहता था। कुशल शासक को भौतिक उन्नति के साथ ही धर्म की वृद्धि की ओर भी ध्यान देना चाहिए। उसे यज्ञादि का अनुष्ठान करना चाहिए। इसीलिए दुर्योधन ने दुःशासन को युवराज के पद पर बिठाकर देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञादि का अनुष्ठान करना प्रारम्भ कर दिया है :–

स यौवराज्ये नवयौवनोद्धतं निधाय दुःशासनमिद्धशासनः।
मखेष्वखिन्नोनुमतः पुरोधसा धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम्।।[13]

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि भारवि ने अपने ग्रंथ के आरम्भ में ही दुर्योधन के द्वारा संचालित शासन–व्यवस्था का उल्लेख किया है जिसे पता चलता है कि किरातार्जुनीयम् का सुयोधन नीतिमान् एवं प्रजावत्सल राजा है। कुशल शासक होने के समस्त गुण दुर्योधन के चरित्र में पूर्णरूपेण दिखायी देते हैं।

संदर्भ :–

1. किरातार्जुनीयम्, भारवि, साहित्य भण्डार मेरठ, पृ० 11
2. सस्ंस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, पृ० 184
3. किरातार्जुनीयम्, भारवि, हंसा प्रकाशन जयपुर, 1.7
4. वही, 1.9
5. वही, 1.10
6. वही, 1.11
7. वही, 1.13
8. वही, 1.14
9. वही, 1.16
10. वही, 1.17
11. वही, 1.19
12. वही, 1.21
13. वही, 1.22

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 117-120

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

श्रीमद् वाल्मीकि रामायण में पर्वतीय जल स्रोत

डॉ. प्रमिला मिश्रा

सहायक आचार्य, प्रभारी संस्कृत विभाग, जगद्गुरु राममद्राचार्य दिव्यांग विश्वविद्यालय चित्रकूट (उ०प्र०)

भारतीय संस्कृति के संवाहक महर्षि वाल्मीकि ने प्राकृतिक सम्पदा के संरक्षण हेतु समाज को अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि प्रदान की है। जिस प्राकृतिक सम्पदा का चित्रण महर्षि वाल्मीकि ने किया है, वह अन्य किसी काव्य में दष्टिगत नहीं होता है। यही कारण है कि रामायण को आधार मानकर अन्य लौकिक साहित्य का सृजन किया गया।

सनातन धर्म में जल को महिमा मंडित करते हुये उसे जीवन का प्रमुख अंग माना है। पूजा अर्चना, यज्ञादि में सर्वप्रथम जल का आचमन और उससे विविध अंगों का प्रेक्षण का विधान है। अथर्ववेद का कथन है कि जल में औषधि के गुण है, और उसमें अमृत विद्यमान है यथा–

'अप्सवन्तरमृतमप्सु बज।'

अथर्ववेद में समस्त प्रकार के जलों को, चाहे वे रेगिस्तान, खोचकर निकाले गये हो, घड़ों में भरे हों अथवा वर्षा से प्राप्त हों, सुखकारी माना गया है यथा– आप शम्याः कुम्भ आमृताः शिवानसन्तु वार्षिकीः।

शं न आपो धन्च्या शमसन्त्वनप्यां। शं नः खनित्रिम।

ऋग्वेद के पर्जन्य सूक्त में कहा गया है कि गरजता हुआ मेघ सभी दुष्कृतो वायुमण्डल के प्रदूषणों) को नष्ट कर देता है जिससे सारा विश्व आनन्दित और प्रसन्न हो उठता है। यथा –

'यत्पर्जन्य कनिक्रदत् स्तनयन् हंसि दुष्कृतः।
प्रतीदविश्वंमोदते यत् किन्च पृथिव्यामधि।'

शतपथ ब्राह्मण जलों को सबका जनक मानता है यथा –

'आपो वै जनयोद्धदम्योहींद सर्व जायते।'

आधुनिक विज्ञान भी सृष्टि का प्रारम्भ जल से मानता है। जिसके आधार पर सर्वप्रथम जल में एक कोणीय विषाणु का जन्म हुआ। महाकवि वाल्मीकि ने आदिकाव्य रामायण में विभिन्न प्रकार के जलस्रोतों का वर्णन किया है। अयोध्याकाण्ड में वर्णन प्राप्त होता है मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम गिरिवर चित्रकूट की शोभा का दर्शन विदेह राज कुमारी सीता जी को कराते हुये कहते हैं :–

राज्यांशनं भद्रे न सुहृदिर्दिवनाभवः।
मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं गिरिम् ।।

श्रीराम ने कहा नहीं यद्यपि मै राज्य से भ्रष्ट हो गया हूँ तथा मुझे अपने हितैषी सुहवों से विलग होकर

रहना पड़ता है, तथापि जब मैं इस रमणीय पर्वत की ओर देखता हूँ, तब मेरा दुःख दूर हो जाता है राज्य का न मिलना और सुइदों का विछोह होना भी मेरे मन को व्यथित नहीं कर पाता है।

विभिन्न पर्वतीय जलस्रोता की शोभा का वर्णन कर रहे हैं।

जलप्रपात रुद्रे दैनिष्यन्देव क्यचित् क्यचित्।
द्वित्वयं शैलः सवन्मद इव द्विपः।।'

इसके ऊपर से कही ऊँचे से करने गिरे रहे है. कही जमीन के भीतर के भीतर से सोते निकले हैं और कही–कही छोटे–छोटे स्रोत प्रवाहित हो रहे हैं। इन सबके द्वारा यह पर्वत मद की धारा बढ़ाने वाले हाथी के समान शोभा पाता है।

श्रीराग को चित्रकूट पर्वत अलकापुरी की भांति दिखाई दे रहा है। यथा– ये

वस्वाकसारां नलिनीमतयैवोत्तरान् कुरून्।
पर्वतस्मिन्नकूटोऽसौ बहुमूलफलोचकः।।''

अर्थात् 'बहुत से फल मूल और जल से सम्पन्न यह चित्रकूट पर्वत कुबेर नगरी वस्वौकसारा – (अलका), इन्द्रपुरी नलिनी (अमरावती अथवा नलिनी नाम से प्रसिद्ध कुबेर की सौगन्धिक कमलों से युक्त पुष्करणी) तथा उत्तर कुरु को भी अपनी शोभा से तिरस्कृत कर रहा है।

चित्रकूट पर्वत से आज भी दो–तीन वर्षों में श्रीकामदगिरि के मुख से जल धारा प्रवाहित होती है। जिसके दर्शन जन सामान्य भी किया करते हैं। लगभग 22 वर्ष पूर्व सरयू जलवारा जिससे निरन्तर जल प्रवाहित होता रहता था आज वह धारा विलुप्त हो गयी है।

चित्रकूट में सीतापुर (रामघाट) से पूर्व की और देवांगना पहाड़ी में एक रमणीय पर्वत शिखर पर कोटितीर्थ शोभायमान है। पौराणिक काल में इस पर्वत का नाम संकर्षण था। यहाँ पहाड़ी पर जलप्रपात प्रस्तर खण्डों पर गिरता है। महर्षि कोटे पर की यह तपस्थली है। ऐसी प्रसिद्धि है कि कोटि कोटि मुनियों ने किसी समय इस स्थान पर तप किया था। वनवास को अवधि में जब श्रीराम ने इन मुनियों को दर्शन देना चाहा तो प्रत्यक मुनि ने यह हठ किया कि पहले भगवान राम का दर्शन मैं करूँगा। एक करोड़ मुनियों का यह हठ देखकर श्रीराम ने अपनी माया शक्ति से एक करोड़ रूप धारण कर इन मुनिजनों को एक साथ दनि दिया था इसी से इस तीर्थ का नाम कोटि तीर्थ हो गया है।'

अतः देवांगना पहाड़ी में आज भी जल स्रोता का दर्शन किया जा सकता है। महाकवि कालिदास ने अपने रघुवं महाकाव्य में चित्रकूट (कामदगिरि) के जल सति एवं प्राकृतिक सौन्दर्य का अदभुत वर्णन किया है। जैसा कि दृष्टव्य है–

धारास्वनोग्दारिदरी मुखोऽसौ श्रृगुडाग्रलन्गाम्बुदवप्रयंक
यन्नाति यं बन्धुरगात्रिचक्षु दृप्तः ककुदमानिय चित्रकूट।

भगवती सीता जी से श्रीराम कहते हैं, हे सुन्दरी। मदोन्मत सोढ़ जैसा यह चित्रकूट पर्वत मुझे–बज्रा सुहावना लगता है। गुफा इसका मुख है, इससे निकलने वाले जल की धारा का शब्द साँड़ की सकार है। इसकी चोटी ही उसकी सीगें हैं और इस पर छाये हुये बादल ही मानो सोगों पर लगी हुई कीचड़ है।

महाकवि तुलसीदास जी श्रीरामचरितमानस में पर्वतीय झरनों का वर्णन दर्शनीय है।

रामसैलवन देखन जाहीं जहां सूख सकल दुख नाहीं।।
झरना झरहिं सुधाराम बारी त्रिविध ताप हर त्रिविध बयारी।।'

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने अपनी मार्या सीता और अनुज लक्ष्मण के सहित चित्रकूट कूट पहुँचकर मृगों और पक्षियों से युक्त स्वच्छ जल धारा वाली नदी मन्दाकिनी को देखकर अयोध्या प्रवाह के दुःख को भूल जाते है–

''सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं नदीं या वां माल्यवती सुतीर्थाम
ननन्च वृष्टौ मृगपक्षिजुष्टां वहाँ न दुःखं पुरविश्वासात्।।''

भगवान श्रीराम को तपस्थली चित्रकूट में विभिन्न पर्वतीय जल स्रोत आज भी दर्शनीय है। यथा हनुमान धारा, मड़फा दुर्ग, कालंजर दुर्ग, अमरावती रामघाट से चार कि०मी० की दूरी पर पूर्व दिशा में एक पर्वत श्रेणी पर प्रकृति के सुरम्यवातावरण में हनुमान धारा' नामक स्थान विद्यमान है। इस धारा के पास पहुँचने के लिये 300 सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती है। लंका विजय के पश्चात जब श्रीराम अयोध्या वापस आये तो हर्षोल्लास का वातावरण छा गया परन्तु हनुमान कुछ उद्विग्न से हो रहे थे। श्रीराम ने उनकी मलीनता का कारण पूछा। हनुमान ने बड़ी विनम्रता से कहा हे स्वामी लंका दहन की उष्णता आज भी – मेरे शरीर को व्यथित कर रही है तब श्रीराम ने कहा कि – हनुमान तुम चित्रकूट जाओ, आपके ऊपर शीतल अमृत के समान जलधारा गिरेगी, जिससे आपकी गर्मी शान्त हो जायेगी श्रीराम की आज्ञा से वीर मुनियों का यह हठ देखकर श्रीराम ने अपनी माया शक्ति से एक करोड़ रूप धारण कर इन मुनिजनों को जलधारा प्रवाहित है। यह एक देवी आपर्य है कि इस धारा का निर्गम स्थान अदृश्य है और यह भी स्पष्ट है कि यह एक पर्वतीय जल स्रोत के रूप में आज भी विद्यमान है। अमरावती के विषय में महाकवि तुलसीदास का कथन पूर्णरूप से चरितार्थ होता है –

कन्दर खोड नदी नवनारे खगम बगाधन चाहि निहारे।।
यहाँ पर दिव्य जल कुम्ब है जिसमें अक्षय जल धारा प्रवाहमान है।

गुप्त गोदावरी नामक स्थान के विषय में महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है – इस मनोहर स्थान पर अप्सरायें नित्य यहाँ आकर नृत्य करती हैं यह स्थान ब्रह्मसदन की भाँति ह्रदयाकर्षक एवं अनुपन है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने अनुज लक्ष्मण एवं भगवती सीता के सहित वनवास की अवधि में जब चित्रकूट राम के चरण कमलों का स्पर्श प्राप्त कर मैनाक पुत्री गोदावरी कृतार्थ हो गई। नीचे की गुफा में सतत जल धारा यहाँ प्रवाहित होती है। महाकवि तुलसीदास जी लिखते हैं –

सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या नेकल सुता गोदावरि धन्या।।
प्रथमहि वेवन्द्र गिरिगुहा राखेर रुचिर बनाय।।
रामकृपानिधि कछुक दिन, बास करहिंगे खाय।।

महर्षि वाल्मीकि ने आदिकाव्य में हिमालय की ज्येष्ठ कन्या भागीरथी गंगा का वर्णन किया है। सगर के साठ हजार पुत्रों द्वारा निर्मित सागर मार्ग से चलते हुये वे वहीं पहुँचे, जहाँ उनके पितृगण भस्मरात में परिणत हो पड़े हुये थे। अनुमान ने विनय पूर्वक महर्षि कपिल की स्तुति की। उनकी स्तुति को सुनकर भगवान कपिल ने अनुमान से कहा– वत्स! यह तुम्हारा अवमेधीय घोड़ा है, इसे ले आओ। मेरी क्रोधाग्नि से भस्म हुये तुम्हारे पितृगण अपने उद्धारार्थ गंगाजल की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ये गंगाजल पाकर ही स्वर्ग जा सकते हैं अन्यथा नहीं।

गंगा को पृथ्वी तल पर ले आने का मैं उपाय बत्ता रहा हूँ, उसके लिये तुम प्रयत्न करो।

गगुडा हिमवतो ज्येष्ठा दुहिता पुरुर्षण।
तस्यां कुरु महाबाहो पितृणां सलिलक्रियाम्।।
भस्मराशीकृतानेतान् प्लावयेल्लोकपावनी।
तया क्लिन्नमिदं भस्म वया लोककान्तया।
मष्टिं पुत्रसचाणि स्वर्गलोकं गमिष्यति।।''

महाराज भागीरथ ने कठिन तपास्या के द्वारा या आशुतोष भगवान् सदाशिव को अनुकूल कर लिया। पुनः भागीरथ की प्रार्थना से जटा के एक भाग को निचोड़ दिया, जो विशाल धारा में परिणत होकर महाराज भागीरथ के रथ के पीछे चल पड़ी।

भागीरथो हि राजर्विर्दिव्यं स्यन्दनमास्थितः।।
प्रायादग्रे महाराजस्तं गगुडा पृष्ठतोडन्यगात्।।

महर्षि वाल्मीकि जी विरचित गगाष्टक में गगुडा की अद्भुत महिमा का वर्णन प्राप्त होता है –

गातः शैलसुवासपनि वसुषाकारकालावलि
स्वर्गारोहण वैजयन्ति भवर्ती भागीरधि प्रार्थये। त्वत्तीरे... – सततं शुभकारि वारि।।'

वर्तमान समय में पतित पावनी माँ गंगा के जल को प्रदूषण मुक्त करने की महती आवश्यकता है। भारत सरकार ने नमामि गंगे परियोजना का प्रारम्भ इसी दृष्टि से किया है। गंगा की स्वच्छता का अभियान तभी सफल हो पायेगा जब प्रत्येक व्यक्ति अपनी जबाबदेही सुनिचित करेगा।

वर्तमान समय में शुद्ध जल का बहुत बड़ा संकट दिखाई देता है विभिन्न प्रकार का प्रदूषण जल को प्रदूषित कर रहा है। हम सभी को प्रकृति का संरक्षण करना होगा तभी जल जैसा प्राणतत्व संरक्षित हो सकेगा।

सन्दर्भ सूची :–

1. अथर्ववेद 14
2. अथर्ववेद 10
3. ऋग्वेद 5–83–8
4. शतपथ ब्राह्मण, 8–0–2–9
5. वा. रा. अयोध्याकाण्ड, 94/3
6. वा. रा. अयोध्याकाण्ड 84/13
7. वा. रा. अयोध्याकाण्ड, 94/28
8. चित्रकूट के घाट से डॉ. रामबहोरी त्रिपाठी, पृ0 54. जी. एच पब्लिकेशन प्रयागराज।
9. ET 13/47
10. श्रीरामचरितमानस अयोध्याकाण्ड
11. वा. रा. अयोध्याकाण्ड 66/35
12. चित्रकूट के घाट से, डॉ. रामबहोरी त्रिपाठी, पृ0 52
13. वही पृ० 62
14. श्रीरामचरित मानस अ० का०
15. बाल्मीकि रामायण 1/41/19–20
16. वाल्मीकि रामायण, 1/43/30–31
17. गंगा अंक, पृ० 21, गीता प्रेस गोरखपुर।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2023 Page No. : 121-125

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ऋग्वैदिक संस्कृति के उदात्त मूल्य

डॉ. दिवाकर पांडेय

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी एवं भोजपुरी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)–802301

ज्ञान के किसी भी क्षेत्र का उत्स वेदों में मिल जाता है। वेद वस्तुतः ज्ञान के आगार हैं, विभवों के आकर हैं, विभुता के रत्नाकार हैं और हैं विभु के संवाहक भी। विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ 'ऋग्वेद' है जिसमें भारतीय संस्कृति के प्रारंभिक; किन्तु उन्नत स्वरूप व्यक्त हुआ है।

जहाँ तक संस्कृति का प्रश्न है तो इसकी कोई सटीक व सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती, कारण कि यह अपने आप में 'स्वतःपूर्ण' तत्व है और 'स्वतःपूर्ण' तत्व को परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता है। फिर भी, मानव का जिज्ञासु–मन विवेच्य विषय को समझाने–समझने के किए उसका सरलीकरण करता है और सरलीकरण हेतु उसे परिभाषाओं में बाँधने का प्रयास करता है।

संस्कृति का कोशगत अर्थ है–शुद्धि, सुधार, परिष्कार, आचरणगत–परम्परा, सभ्यता का वह स्वरूप जो आध्यात्मिक एवं मानसिक वैशिष्ट्य का द्योतक होता है।[1]

इन अर्थों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृति का सीधा संबंध मनुष्य के आचरण की शुद्धता और मानसिक सद्वृतियों के प्रकाशन से है।

जहाँ तक संस्कृति को परिभाषित करने का प्रश्न है तो इसे विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया है। 'दिनकर' की प्रसिद्ध पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' की भूमिका में जवाहरलाल नेहरू ने संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहा है– ''संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढ़ीकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है .... मन, आचार अथवा रुचियों की परिष्कृति या शुद्धि है.... यह सभ्यता का भीतर से प्रकाशित हो उठना है।''[2]

प्रसिद्ध रूसी साहित्यकार टालस्टाय का कहना है –'सामान्य जनता में प्रचलित आस्था, विश्वास, परम्परा एवं रीति–रिवाज समाज ही वास्तविक संस्कृति का निर्माण करते हैं। इन्हें सीखने के लिए किसी विश्वविद्यालय की शरण नहीं लेनी पड़ती है, बल्कि व्यक्ति अपने पूर्वजों से सुनकर, इस विस्तृत समाज में लोगों को वैसे करता देखकर, संस्कृति को ग्रहण करता है।''[3]

उपर्युक्त परिभाषाओं से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृति संचरणशील होती है तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्वयमेव संचरित होती रहती है।

जहाँ तक मेरा विचार है कि संस्कृति में कुछ शाश्वत एवं उत्तम मूल्य समाहित होते हैं, जो मनुष्य को जीवन जीने की कला सिखाते हैं। संस्कृति जहाँ एक ओर जीवन जीने की कला सिखाती है, वहीं दूसरी ओर

जीवन को दिशा देने हेतु उत्तम मूल्यों की स्थापना भी करती है, यही मूल्य आगे चलकर भावी संस्कृति को परिमार्जित कर उसका उत्कर्षण करते हैं।

यानी एक वाक्य में कहा जाय तो यही कहा जा सकता है कि उच्चतम व उदात्त मूल्यों के साथ जीवन जीने की कला को संस्कृति कहते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि उदात्त मूल्य क्या हैं? यह भी एक सुखद आश्चर्य है कि यह उदात्त शब्द भी 'ऋग्वेद' से जुड़ा हुआ है। ऋचाओं के गायन में तीन स्वरों के प्रयोग होते हैं–उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

उदात्त स्वर उत्कर्ष की ओर जाता हैं। साहित्य में यह एक सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित है। यूनानी दार्शनिक लोंजाइनस ने काव्य में उदात्त तत्वों की अनिवार्यता पर बल दिया है, उन्होंने उदात को परिभाषित करते हुए कहा है, ''उदात्त महान आत्मा की प्रतिध्वनि है।''[4]

उन्होंने ने यहाँ तक कहा है कि ''हृदय में क्षुद्र विचारों का पोषण करनेवाला व्यक्ति कभी उदात्त रचना कर ही नहीं सकता।''[5]

यानी, उदात्त वाणी निःसृत करने के लिए हृदय में महान विचारों का पोषण करते रहना आवश्यक है।

दूसरी ओर भारतीय विद्वान आचार्य जगदीश पांडेय ने अपनी पुस्तक ''उदात्त : सिद्धान्त एवं शिल्पन'' में उदात्त को परिभाषित करते हुए कहा है –

''जो आलम्बन हमारे चित्त को मात्र आकर्षित न कर उसका उत्कर्षण करे, वह उदात्त कहलाता है।''[6]

जो आलम्बन आकर्षित कर हमारे मन को आह्लादित करे, वह सुंदर कहलाता है और जो चित्त को आह्लाद से ऊपर उठाकर इसे दूसरे लोक में रमा दे, यानी उसका उत्कर्षण कर दे, वह उदात्त कहलाता है।

भारतीय मनीषा में इन्हीं उदात्त मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है। एक उदाहरण द्वारा इसे और स्पष्ट किया जा सकता है।

संस्कृत का एक श्लोक है :–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुखभाग्भवेत्।''

यहाँ 'स्व' से 'पर' की ओर उत्कर्षण है। अपने लिए सुख–समृद्धि–स्वास्थ्य की कामना तो हर कोई कर लेता है, पर जहाँ 'स्व' तिरोहित होकर 'पर' में लय हो जाता है, तो उसका उत्कर्षण हो जाता है, फिर तो उसे समस्त विभुता विभु–सी दिखाई देने लगती है और वह सर्वे भवन्तु सुखिनः और सर्वे सन्तु निरामया की बात करने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये भावबोध वेदों से चलकर उपनिषदों तक पहुँचे हैं जिसका बीज तत्त्व 'ऋग्वेद' में प्राप्त होता है।

'ऋग्वेद' भारतीय संस्कृति का उद्‌गम–स्रोत है। मानव संस्कृति का संवाहक होता है, हाड़–मांस से निर्मित शरीर को मनुष्य तो कहा जा सकता है, पर वास्तव में वह मनुष्य तब तक नहीं होता, जब तक उसके भीतर मानवीय गुणों का विकास नहीं हो जाता और वह अपने इन सद्‌गुणों को आचरण में लाकर प्राणिमात्र का कल्याण नहीं करता।

ऋग्वेद में कहा गया है –

''तन्तुं तन्वन्नजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पधोरक्ष धिया कृतान।

अनुलब्णं वयत जोगुवामयो मनुर्भव दैव्य जनम्।।''[7]

यह ऋचा कहती है कि तू मनुष्य है तो सच्चे अर्थों में मनुष्य बन, तेरा लक्ष्य आत्मविश्वासहीन न हो, तू केवल मनुष्य बनकर संतोष मत करना अपने आदर्शों के लिए उत्सर्ग होने को सदा तत्पर रहना ताकि मानवता का निर्वाह रुकने न पाएं।

भारतीय संस्कृति में जिन उदात्त मूल्यों की प्रतिष्ठा मिलती है, उनमें से एक प्रकृति प्रेम है। मानव और प्रकृति का रिश्ता अनादिकाल से रहा है, मानव ने जब पहली बार अपनी आँखों को खोला होगा तो उसकी पहली दृष्टि प्रकृति पर ही पड़ी होगी। प्रकृति को मानव ने कई रूपों में देखा है। मानव का भावुक मन प्रकृति के सौंदर्य पर मुग्ध होता है, जिज्ञासु मन उसके कार्य–व्यापारों से शिक्षा भी ग्रहण करता है और साधक का मन उसमें मंगल प्रेरणा का सूत्र भी तलाशता रहता है। अगर मानव ऐसा न करे और केवल अपने भावों को समेटकर अपने हृदय को शेष सृष्टि से किनारे कर ले या स्वार्थ के पशुवृत्ति में ही लिप्त रखे तो उसकी मनुष्यता कहाँ रहेगी?''[8]

'ऋग्वेद' में मानव एवं प्रकृति का सम्बन्ध अटूट है, उसमें प्रकृति को पूज्य भाव से देखा गया है। प्रकृति के दो रूप होते हैं – कोमल और कठोर। 'ऋग्वेद' में प्रकृति के कोमल रूप को संपूजित किया गया है। 'ऋग्वेद' में प्राकृतिक उपादानों–पृथ्वी, अंतरिक्ष, वनस्पतियों एवं औषधियों आदि–से विश्व कल्याण हेतु शांति प्रदान करने की याचना की गयी है –

''शं नो द्यावापृथिवी पूर्व हुतो शमन्तरिक्षं दृश्ये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजस्पतिरस्तु जिष्णु :। 07/35/05

प्रकृति से विश्व शांति की कामना भावना में अत्यंत ही उदात्तकोटिक है। इतना ही नहीं, सिंधु, सरस्वती आदि पवित्र नदियों के लिए भी कामना की गई है कि वे पर्याप्त जलराशि के साथ अन्न एवं दुग्धादि को बढ़ाती हुई प्रवहमान रहें –

''आ यत्साकं यशसो वावसानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता
याः सुष्वयंत सुदुधा सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः।'':[10] (07/36/06)

'ऋग्वेद' में सांस्कृतिक चेतना के उदात्त पक्ष पर विशेष बल दिया गया है। 'स्व' के लिए उसमें कहीं कोई स्थान नहीं है। एक वचन का सर्वथा अभाव है, बहुवचन का सर्वत्र भाव है। 'मैं' का कहीं अस्तित्व नहीं, 'हम' ही हर जगह विद्यमान है। यह उदात्त भावना मानव में कल्याण की भावना भरती है। जैसा कि इस आलेख के प्रारम्भ में कहा गया है कि हृदय में क्षुद्र विचारों का पोषण करनेवाला व्यक्ति कभी उदात्त रचना कर ही नहीं सकता, वह 'ऋग्वेद' में पूर्ण सत्य सिद्ध होता है। 'ऋग्वेद' में मानव को कल्याणकारी एवं निष्पाप मार्ग का अनुशरण करने की कामना की गयी है, ताकि वह समस्त द्वेष भावनाओं को त्यागकर दिव्यशक्ति प्राप्त कर सके।

''अपि पंथगमन्मगहि स्वस्तिगामनेहसम्।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु।।''(06/51/16)

मनुष्य द्वारा समस्त द्वेष भावनाओं का त्यागकर, कल्याणकारी एवं निष्पाप मार्ग पर चलकर दिव्यशक्ति प्राप्त करने की भावना अत्यंत ही उदात्त कोटिक है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह कामना 'स्व' के लिए नहीं, अपितु 'पर' के लिए की गयी है।

दूसरी ओर इस पृथ्वी पर जीवन धारण करने का जो लक्ष्य बताया गया है, वह भावना में उदात्त कोटिक

है –

''जातो जायते सुदिनत्वे अन्हां समर्य आ विदथे वर्धमानः।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदर्यित वायम।''[12] (3/8/5)

यानी, जिस व्यक्ति ने इस भूमि पर जीवन धारण किया, वह जीवन को सुंदर बनाने के लिए ही किया, बल्कि उसका जन्म ही जीवन को सुंदर बनाने के लिए हुआ है। वह जीवन–संग्राम में लक्ष्य साधन के लिए अध्यवसाय करता है। धीर व्यक्ति अपनी चिंतन–शक्ति द्वारा अपने सत्कर्मों को पावन बनाते हैं और विप्रजन दिव्य भावना से वाणी का उच्चारण करते हैं।

इस ऋचा में मानव–जीवन धारण करने का जो उद्देश्य बताया गया है कि जीवन को सुंदर बनाने के लिए ही जीवन मिला है, वह उद्देश्य उदात्त भावों की अभिव्यक्ति करता हैं। जिस जीवन को आगे चलकर क्षणभंगुर, नश्वर, पाप की गठरी और न जाने क्या –क्या कहा गया, उसी जीवन को ऋग्वैदिक संस्कृति में सौंदर्य के रूप में देखा गया है। एक ऐसा सौंदर्य जो सौंदर्य को और अधिक सुंदर बनाने के लिए ही उत्पन्न हुआ है। यहाँ जीवन से पलायन की बात नहीं, अपितु जीवन–संग्राम में उतर कर लक्ष्य साधन की बात कही गयी है। इतना ही नहीं, यहाँ तो वाणी का उच्चारण भी दिव्यभावना से करने की बात कही गयी है। यानी, जीवन उदात्त, कर्म उदात्त, संघर्ष उदात्त और वाणी भी उदात्त। निश्चित ही सांस्कृतिक स्तर पर यह भावना उदात्त मूल्यों की प्रतिष्ठा करती है। ऋग्वैदिक संस्कृति की उदात्तता तब और अधिक उत्कर्षित होने लगती है, जब वह ज्ञान की वृद्धि के लिए सभी दिशाओं के गवाक्ष खोलने की बात कहती है –

''आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतो दब्द्धसो अपरितास उदिमदः
देवा नो यथा सदमिद वृधे असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवे–दिवे।''[13] 01/89/02

आज का युग तार्किकता का युग है, बौद्धिकता का युग है, ज्ञान विज्ञान का युग है। आज मानव अपने को प्रगतिशील विचारों का कहता है, उसके भी विचार इतने उत्तम नहीं दिखते कि वह जन–सामान्य के प्रवेश के लिए अपनी खिड़कियाँ खोल सके। इस तथाकथित प्रगतिशीलता में संकीर्णता घुली हुई है। वहीं ऋग्वैदिक युग में यह कमाना की गयी है कि हमारे पास चारों दिशाओं से कल्याणकारी ज्ञान आते रहें, ये बाहर से आए शुभ ज्ञान न तो किसी से बाधित हो सके और न ही किसी के दबाये दबने वाले हों, अपितु ये ज्ञान अज्ञात विषयों को प्रकट करने वाले हों।

आज जिस विश्वग्राम की अवधारणा शुरू हुई है, उसका उदात्त रूप ऋग्वैदिक काल में दिखाई पड़ता है। ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ उदात्त मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है। विस्तारभय के कारण उन मूल्यों की चर्चा न कर हम सीधे 'ऋग्वेद' के समापन अंश पर आते हैं, जहाँ उदात्त मूल्यों की प्रतिष्ठा की गयी है।

'ऋग्वेद' के अंत में आते–आते तो उदात्त मूल्यों की इतिश्री हो गयी है, जहाँ मनुष्यों की मनसा वाचा–कर्मणा एकत्व की कामना की गयी है –

''संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्
देवा भागं यथा पूर्वे सज्जानाना उपासेत।''[14] (10/191/02)

अर्थात् हम सभी मिल–जुल कर चलें, परस्पर मिलकर स्नेहपूर्वक वार्त्तालाप करें, हमारे मन–समान विचार धारा वाले होकर ज्ञानार्जन करें, अपने पूर्व पुरुषों की तरह हम एक मत हो जाएं।

इतना ही नहीं, सबकी प्रार्थनाएं एक समान हों, भेदभाव रहित पारस्परिक मिलन हो, हमारे विचार तन्तु समान हो, ऐसी उदात्त कमान की गयी है –

''समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम
समानं मन्त्रमयि मंत्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।'' (10/191/3)

और अंत में मन ह्रदय और संकल्प की एकत्व कामना कर उदात्त मूल्यों का जो समन्वय किया गया है, वह उदात्त की पराकाष्ठा है–

''समानी व आकूतिः समाना ह्रदयानि व :।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहाति।''[16] (10/191/04)

आधुनिक युग में राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद का जो दर्शन दिया गया है, वह मात्र पूँजी की सभ्यता की बात करता है। जहाँ मानव की भौतिक उन्नति का दर्शन अधिक मुखरित हुआ है। यह पाश्चात्य दर्शन भौतिक ऐश्वर्य के समत्व की बात करता है, जहाँ मानव मात्र एक पुर्जा भर दिखता है, इस दर्शन में आध्यात्मिक उन्नति एवं भावनात्मक समत्व की कामना नहीं दिखती है, पर 'ऋग्वेद' की अंतिम ऋचा में आते–आते जिस सांस्कृतिक मूल्य की स्थापना की गई है, वह मानव–मन को अपने मे रमाने वाली है, उसका उत्कर्षण करने वाली है। मन, ह्रदय एवं कर्म (संकल्प) के समत्व की कामना, ह्रदय की भावना में उदात्त मूल्यों की पराकाष्ठा है। 'ऋग्वेद' में जिन उदात्त मूल्यों की प्रतिष्ठा की गयी है, वे आगे चलकर और अधिक प्रतिष्ठित होते गए। वेद, उपनिषद, ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में यह परम्परा विकसित होती रही। 'ऋग्वेद' के परवर्ती वेद यजुर्वेद में तो यह मूल्यबोध अत्यधिक विस्तार पाता है जब पूरे विश्व को ही एक घोसला कहा जाता है–यत्र विश्वं भवत्येक नीड़म्।' मूल्यों की यह उदात्तता 'ऋग्वेदः से प्रारंभ हुई जो परवर्ती काल में भारतीय संस्कृति को दाय के रूप में प्राप्त हुई।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. वृहत हिंदी कोश – मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव : ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी।
2. संस्कृति के चार अध्याय – रामधारी सिंह दिनकर : राजकमल, दिल्ली।
3. परिषद पत्रिका –बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।
4. काव्य में उदात्त तत्व – डॉ. नगेन्द्र, राजपाल एन्ड संस् दिल्ली।
5. उपरिवत्।
6. उदात्त : सिद्धांत और शिल्पन : आचार्य जगदीश पांडेय, अर्चना प्रकाशन, आरा।
7. ऋग्वेद संहिता – सं. श्रीराम शर्मा आचार्य : युगनिर्माण योजना, विस्तार ट्रष्ट मथुरा।
8. चिंतामणि, भाग – 1 – आचार्य रामचन्द शुक्ल, राजकमल दिल्ली।
9. 9,10,11,12,13,14,15,16 ऋग्वेद संहिता : सं. श्रीराम शर्मा आचार्य।

मो. 9430622134

Email id - diwakarara3@gmail.com

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

डॉ. निशीथ गौड़, लब्ध स्वर्णपदक, यू जी सी नैट परीक्षा उत्तीर्ण

एम. ए. संस्कृत एवं हिंदी, बी.एड,पी एच.डी,

असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, डी.ई.आई. (डीम्ड विश्वविद्यालय) दयालबाग, आगरा।

प्रकाशन सम्मान एवं अनुसंधान :-

- 12 पुस्तकें प्रकाशित।
- 16 पुस्तकें संपादित।
- 20 शोध आलेख प्रकाशित।
- 40 राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में सहभागिता एवं शोध पत्र प्रस्तुति।
- गीना देवी शोध श्री सम्मान 2023, गीना देवी शोध संस्थान, भिवानी।
- हिंदी सेवी विदुषी सम्मान, कथा, यू.के, लंदन 2018
- सिहाग साहित्य सम्मान, भिवानी, हरियाणा 2018
- चौधरी खूम सिंह स्मृति सम्मान, अलवर 2017
- हिंदी मनस्वी सम्मान, आगरा 2016
- अवार्ड फॉर बेस्ट पेपर, एसआरएसडी पेपर मेमोरियल शिक्षा शोध, आगरा 2015
- आउटस्टैंडिंग फैकल्टी अवार्ड, चेन्नई, 2015
- लोक रत्न राष्ट्रीय पुरस्कार, वर्धा 2010
- ज्वेल ऑफ़ इंडिया, युवा समूह प्रकाशन, वर्धा 2009

ईमेल –**nishithgaur@dei.ac.in**

डॉ. वर्षा रानी, M. Ed; MA (संस्कृत), UGC NET/JRF, Ph.D

संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराव आम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

प्रकाशन, सम्मान एवं अनुसंधान :-

- नारी गौरव सम्मान 2022, कृष्णा बसंती रिसर्च लिटरेचर एक्सीलेंस अवॉर्ड 2022,
- राष्ट्र पुत्री सम्मान 2023
- 7 पुस्तकें और 2 सम्पादित जर्नल प्रकाशित
- अभी 2 पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य प्रगति पर है
- 11 शोध आलेख प्रकाशित एवं 15 शोध आलेखों की प्रस्तुति
- 35 सेमिनार, कॉन्फ्रेंस, वेबीनार इत्यादि में सहभागिता
- अन्तराष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी में सहभागिता और सम्मानित
- बोहल शोध मंजूषा पत्रिका की विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति में शामिल
- एशियन सोसाइटी ऑफ़ डिज़ास्टर मैनेजमेंट की सदस्य।

संपर्क सूत्र :- 9671904323

ईमेल –**vasu14rani@gmail.com**

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115